मलिनता रखे विना, निर्मल मन से, सनाथी मुनि द्वारा उपदे-
शत धर्म का अनुरागी हुआ। सनाथी मुनि के उपदेश द्वारा
प्राप्त धर्म से, केवल उसने अकेले ने ही लाभ नहीं लिया, किन्तु
अपने साथ ही, रानियों एवं बन्धु-बान्धवों को भी उस धर्म का
लाभ दिया। अर्थात्, वह बन्धु बान्धवो और रानियों सहित
धर्म का अनुरागी हुआ।

सत्य के जिज्ञासु वीर का हृदय, सच्चे उपदेश से, बहुत
जल्दी पलट जाता है। ऐसा व्यक्ति, दुराग्रह या पक्षपात में नही
पड़ता। यह बात दूसरी है कि परिस्थिति आदि के विचार से,
ऐसा व्यक्ति, प्रकट मे अपनी मान्यता न पलट सके, लेकिन उच्च
कुल एवं उच्च करणीवाला व्यक्ति, सच्ची बात स्वीकार करने में,
कदापि देर न करेगा। मुनि के सच्चे उपदेश को स्वीकार करने,
एवं व्यवहार में इस उपदेश को दृष्टि में रखने के कारण ही,
राजा श्रेणिक, भविष्य मे पद्मनाथ नाम का तीर्थङ्कर होगा।

श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं—

इयरो वि गुण समिद्धो तिगुत्ति गुत्तो तिदंड विरओ य।
विहग इव विप्पमुक्को विहरइ वसुहं विगय मोहो॥ ६०॥

भावार्थ—गुणों से समृद्ध, त्रिगुप्ति से गुप्त और मन वचन काय से
किसी को दण्ड न देनेवाले सनाथी मुनि भी, बन्धन रहित स्वतन्त्र पक्षी
की तरह, मोह रहित अप्रतिबन्ध विचरने लगे।

संयम के नियमों का पालन करना, त्रिगुप्ति से गुप्त रहना और मन वचन काय मे किसी भी जीव को दुःख न देना, यह तो संयमी का कर्त्तव्य है ही, लेकिन जिस प्रकार स्वतन्त्र पक्षी एक जगह से दूसरी जगह उड़ता रहता है, उसी प्रकार एक जगह से दूसरी जगह विचरते रहना किसी एक स्थान से मोह करके उसी स्थान पर न रहना भी, मुनि का कर्त्तव्य है। राजा श्रेणिक, सनाथी मुनि का उपदेश सुनकर उनका भक्त बन गया था, फिर भी सनाथी मुनि राजगृह नगर या उसके बाग मे, अधिक नहीं ठहरे, किन्तु वहाँ से विहार कर गये। इस प्रकार भ्रमण करते रहनेवाला साधु ही, संयम का पालन कर सकता है। वृद्धावस्था, बीमारी, आदि एवं चातुर्मास के सिवा, किसी एक स्थान पर अधिक समय तक रहना, मुनि-कर्त्तव्य के विरुद्ध है।

श्री सुधर्मा स्वामी ने, श्री सनाथी मुनि द्वारा वर्णित अनाथता सनातथा का स्वरूप, श्री जम्बू स्वामी को सुनाया। इस स्वरूप को समझकर जो अनाथता का परित्याग करेगा, एवं जो ऐसे अनाथता के त्यागी की उपासना करेगा, वह, परम्परा पर भव-बन्धन से छूटकर मोक्ष प्राप्त करेगा।

ॐ शान्ति।

मण्डल द्वारा प्राप्य पुस्तकें।

पुस्तक	मूल्य
अहिंसा व्रत	।)
सकडालपुत्र	=)
धर्मव्याख्या	=)
सत्यव्रत	≡)
हरिश्चन्द्र-तारा	।।)
अस्तेय व्रत	=)
सुबाहुकुमार	=)
ब्रह्मचर्य्य व्रत	=)
वैधव्य दीक्षा	-)
सद्धर्म मण्डन	१।≡)
अनुकम्पा विचार	।।)
पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज का जीवन चरित्र	।।)
शालिभद्र चरित्र	।≡)
मिल के वस्त्र	-)
मातृ पितृ सेवा	-)
गजसुकुमार मुनि	-)॥
सनाथ-अनाथ निर्णय	=)
स्मृति श्लोक संग्रह	।-)
जैन धर्म शिक्षावली (सातवाँ भाग)	।=)
रुक्मणी विवाह (छप रही है)	

मिलने का पता—
सेक्रेटरी
श्री जैन हितेच्छु श्रावक-मण्डल,
रतलाम (मालवा)

प्रेस, (केसरगंज) अजमेर में छपा—संचालक—जीतमल लूणिया

मेघकुमार

धन और धर्म दोनों का लाभ

क्या आप चाहते हैं कि हमारा जीवन सफल बने?

सफल जीवन बनाने के लिये राजनैतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, एवं साहित्यिक ग्रंथों का अध्ययन कीजिये और जैन समाज में क्रान्ति फैलाने वाला **दयादान** सम्बन्धी साहित्य पढ़िये। इस केलिये आप और अपने इष्टमित्रों को जीवन-ग्रंथमाला के सदस्य बना कर जीवन ज्योति जगाइये।

उद्देश्य—नवयुवकोपयोगी साहित्य आध्यात्मिक तथा प्राचीन ग्रंथ, इतिहास, व्याकरण, कोष, **दया दान विचार**, नवयुग सन्देशादि का निर्माण करना।

(१) ५) रुपये दीजिये और तीन साल के बाद ५॥) लीजिये। तथा आज से स्थायी ग्राहक का लाभ भी मिलेगा।

(२) ५) रुपये पुस्तकों के लिये पेशगी देने वालों को ६।) की पुस्तकें मिलने के बाद स्थायी ग्राहक भी समझे जावेंगे।

(३) १) रु० जमा कराने वाले सज्जन स्थायी ग्राहक समझे जायँगे, उन्हें सब पुस्तकें पौने मूल्य में मिलेंगी तथा पुस्तक छपने की सूचना मिलती रहेगी।

(४)१०) जमा कराने पर आठ आना प्रतिवर्ष, तथा पुस्तकें लेने पर १३) की और दोनों को स्थायी ग्राहक का लाभ भी मिलेगा। एक वर्ष बाद यह रकम सूचना पर वापिस करदी जायगी।

नोट १-एक रुपये से कम की वी० पी० नहीं भेजी जायगी।

२-एक रुपया जमा कराने पर भी पूज्य श्री के व्याख्यान और माला की पुस्तकें बुक पोस्ट से मिलेंगी, इससे वी० पी आदि के व्यय से बचेंगे।

पं० छोटेलाल यति, जीवन कार्य्यालय,

(नाथ द्वारा हवेली हेड पोस्ट आफिस के पास) अजमेर

जैन-ग्रन्थमाला पुष्प नं० ५८

मेघकुमार

लेखक.—

पंडित छोटेलाल यति

जैन कार्यालय अजमेर.

प्रकाशक—
पं. छोटेलाल यति
जीवन कार्यालय अजमेर

पुस्तक के प्राप्ति स्थान.—
(१) श्री टीकमचन्द जी यति रागडी चौक बीकानेर
(२) जैन प्रकाश पुस्तकालय, सुजानगढ [बीकानेर]
(३) जैन हितेच्छु श्रावक मण्डल चाँदनी चौक रतलाम
(४) जीवन कार्यालय नाथद्वारा हवेली अजमेर
(५) दी प्रभात प्रिंटिंग वर्क्स अजमेर

मुद्रक.—
बलदेवप्रसाद शर्म्मा
दी प्रभात प्रिंटिंग वर्क्स,
केसरगंज अजमेर

प्राक्कथन

हमें बड़ी प्रसन्नता है कि जीवन ग्रन्थमाला की ओर से हम जैन समाज की सेवा में मेघकुमार का चरित्र रख रहे हैं। मूल ज्ञाता धर्म कथा में यह बड़ी सुन्दरता पूर्ण भावना एवं उमंगों से पूरित है। प्राचीन काल में गर्भिणी के विचारों पर इच्छाओं का किस पूर्ण किया जाता था उसका अच्छा वर्णन प्रस्तुत पुस्तक में

प्रकाशक—

पं. छोटेलाल यति

जीवन कार्यालय अजमेर

पुस्तक के प्राप्ति स्थान.—

(१) श्री टीकमचन्द जी यति रागडी चौक बीकानेर

(२) जैन प्रकाश पुस्तकालय, सुजानगढ [बीकानेर]

(३) जैन हितेच्छु श्रावक मण्डल चाँदनी चौक रतलाम

(४) जीवन कार्यालय नाथद्वारा हवेली अजमेर

(५) दी प्रभात प्रिंटिंग व र्स अजमेर

मुद्रक —

बलदेवप्रसाद शर्म्मा

दी प्रभात प्रिंटिंग वर्क्स,

केसरगंज अजमेर

चरित्र को पढे और अपने जीवन मे सात्विक त्यागमयी भावनाओं की वृद्धि करे इसी मे हम अपने परिश्रम को सफल समझेगे।

इस पुस्तक के प्रकाशित करने मे हमे पूज्य श्री १००८ जवाहिरमलजी महाराज कृत सद्धर्म-मंडन तथा प्रो० बेचरदासजी की गुजराती धर्म कथाओ से बड़ी सहायता मिली है। अतएव आप महानुभावो के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं।

अतमे हम अपने मित्र प० बलदेव प्रसाद शर्मा को भी हार्दिक धन्यवाद देते है जिन्होने निष्काम भावना से पुस्तक के अनुवाद संशोधन और प्रूफरीडिंग मे आशातीत सहायता प्रदान की है।

यदि उदार एवं धर्म पिपासु पाठक एव पाठिकाओ का सहयोग पूर्ण रूपेण रहा तो हम "जीवन ग्रंथमाला की ओर से शीघ्रही उत्तमोत्तम पुस्तकों की भेट करने मे समर्थ हो सकेंगे।

अजमेर
श्रावण शुक्ला ३ सं० १९९१

विनीत—
छोटेलाल यति

नामक मगध ❀ देश की एक राजधानी थी। उसमें

आवश्यक निर्युक्ति के अवचूर्णी मे लिखा हुआ है कि यहाँ पहले क्षिति प्रतिष्ठित नामक नगर था। उस के क्षीण वास्तुक (पुराना) जानकर जितशत्रु राजानिक वहां चनकपुर नामक नगर बसाया। कालांतर में क्षीण होते २ वहां ऋषभपुर की स्थापना हुई। वही फिर कुशाग्रपुर हुआ। उसके संपूर्ण जल जाने पर श्रेणिक राजा के पिता प्रसेनजित ने वहां राजगृह बसाया।

पन्नवणा सूत्र में राजगृह को मगध की राजधानी रूप में वर्णित किया है।

भगवती सूत्र के दूसरे शतक के पाचवे उद्देशो मे राजगृह के पानी के गरम सोतों (झिरों) का भी उल्लेख है। चीनी प्रवासी फइयान और ह्युएनसिग ने भी गरम पानी के सोतो को देखने का उल्लेख किया है। बौद्ध ग्रंथों में इन सोतो को तपोद नाम से वर्णन किया है।

❀ **मगध**—ऋग्वेद में इस देश का कीटक नाम से उल्लेख है; अथर्ववेद में इसका नाम मगध आता है। हेमचन्द्राचार्य अपने कोष मे दोनों ही नाम का निर्देश करते है। पन्नवणा सूत्र मे आर्य देशों की नामावलि गिनाते हुए मगध का नाम सर्व प्रथम दिया है आज के बिहार को हम प्राचीन मगध कह सकते है। यहां पर बौद्ध और माननीय एतिहासिक स्थान मंजूद हैं।

श्रेणिक * नामक राजा राज्य करता था। वह उस नगर का पिता पालक और सुशोभित दानी, दयाशील और मर्यादाशील था। उसकी नन्दादेवी नामक रानी तथा अभयकुमार नामक बहुत ही चपल—हाजिरजवाब और प्रतिभाशाली पुत्र था। राजा श्रेणिक अपने महत्वपूर्ण कार्यों में अभयकुमार की ही सलाह लिया करता था।

अभयकुमार केवल अपने सारे परिवार में ही सलाह देने

वाला या पूछा जाने वाला नहीं था किंतु पिता के सम्पूर्ण राज्य की, उनके अधीन दूसरे राष्ट्रों की, खजाने की, राजकीय अन्न भण्डार की सेना की, वाहनों की, प्रत्येक नगर तथा गांव की, और राजा श्रेणिक के अन्त पुर की भी व्यवस्था उसी के हाथ मे मे थी। राजा श्रेणिक के धारिणी नामक एक अतिप्रिय रानी और। थी राजा ने अपनी सब रानियो के लिये अलग-अलग राजभवन निर्माण करवाये थे। सारे राजभवन भीतर और बाहर उज्ज्वल थे। उनकी तल भूमि बड़ी मजबूती मे बनवाई गई थी, उनके दरवाजे खिड़कियाँ, झरोखे और गोखडो आदि पर नाना प्रकार के चित्र और खुदाई के काम किये हुए थे। महल के प्रत्येक कमरे की छतो मे चंदवे टगे हुए थे। प्रत्येक कमरे मे निरंतर रोग नाशक तथा सुगन्धिकारक धूप निरंतर जला करती थी। वहां की प्रत्येक खिड़की और दरवाजो पर अनेक प्रकार के सुन्दर चित्र अलग-अलग प्रकार के गुंथे हुए परदे बंधे हुए थे।

इसी प्रकार के एक महल मे धारिणी देवी रहती थी। एक बार रात्रि को मच्छरदानी मे ढके हुए, सुवासित एवं नरम बिछौने पर अर्ध जागृत अवस्था मे शयन कर रही थी। उस समय रात्रि के पूर्व भाग के अन्त मे तथा दूसरे भाग के प्रारम्भ मे एक सर्व लक्षण सम्पन्न, चांदी के ढेर के समान सफेद और सात हाथ ऊंचा गजराज अपने मुख मे प्रवेश कर रहा है ऐसा

इस तरफ राजा श्रेणिक ने अपने कौटुम्बिक* पुरुषो को बुला कर, सुगन्धित जल का छिटकाव कराकर, पांच प्रकार के पुष्पों से सुवासित कर, योग्य स्थानो पर पुष्पो की मालायें टंगवा कर, सुगन्धी धूप से धूप दानियाँ भरवा कर अपने बैठक को सज्जित करने की आज्ञा दी।

प्रातःकाल होते ही राजा श्रेणिक ने अपनी अट्टणशाला मे जाकर नाना प्रकार के व्यायाम किये, कुशल तैल मर्दको को बुलवा कर, उनसे हड्डियाँ, मांस, चमड़ी और वालो के सुख तथा आरोग्य के लिये नाना प्रकार के सुगन्धित तैल मर्दन करवाये। उसके बाद स्नान घर मे जाकर सुवासित समशीतोष्ण जल द्वारा स्नान करके अगोछे से शरीर को भली प्रकार पोछा। पश्चात् योग्य वस्त्राभूषण धारण करके बाहर की बैठक मे आकर सिंहासन पर पूर्वाभिमुख होकर वह बैठा।

वहा उसने अपने पास ईशान कोण मे आठ भद्रासन सफेद वस्त्रो से ढके हुए रखवाये और दूसरी तरफ जवनिका† बधा

---

* जैन सूत्रो मे कौटुम्बिक शब्द अपने खास नौकरो के लिये आया है कौटुम्बिक शब्द का अर्थ कुटुम्ब का व्यक्ति होता है। इस पर से त यही मालूम होता है कि राजा लोग अपने ही राजवंशियो मे से कितनो ही को अपनी खास तैनाती मे रख लिया करते थे। वर्तमान मे भी प्राय ऐसा देखने मे आता है।

† (जवनिका) यवन शब्द के साथ ही इसका सम्बन्ध है।

स्वीकार करके राजा को आशीर्वाद देते हुए वे अपने लिए बिछाये हुए आसनो पर बैठ गये। जवनिका के पीछे रखे हुए आसन पर रानी भी आकर बैठ गई।

राजा ने फल और पुष्प हाथ मे लेकर विनयपूर्वक उन स्वप्न पाठको के प्रति रानी का स्वप्न बता कर उसका फल पूछा।

स्वप्न पाठको ने परस्पर विचार विनिमय करते हुए शास्त्र की गाथाओ के साथ राजा से कहाः—

"हे राजन्! हमारे स्वप्न शास्त्र मे (मूल पुस्तक) ४२ स्वप्न तथा ३० महास्वप्न गिनाये है। उन ३० महास्वप्नो मे ही महारानी जी का बतलाया स्वप्न आता है। इससे आपको अर्थ लाभ, पुत्र लाभ, राज्य लाभ, और भोग सुख का लाभ प्राप्त होगा यही विदित होता है। इसतरह पूरे नव मास और साढ़े सात दिवस व्यतीत होने के पश्चात्, रानी के गर्भ से एक कुलदीपक पुत्ररत्न का जन्म होगा। वह युवाहोकर या तो राज्य का स्वामी होगा या फिर भावितात्मा अनगार (साधु) होगा। यह वर्णन श्रवण करते ही राजा और रानी दोनो ही बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उन स्वप्न पाठको का विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तथा वस्त्र,

इस विषय पर कई ग्रंथो मे अनेक प्रकरण दिखाई देते है। जैसे—सुश्रुत शरीर स्थान अध्याय ३३०, ब्रह्मवैवर्त पुराण,—जन्मखण्ड अध्याय ७, भगवती सूत्र —शतक १६ उद्देशक ६।

रानी को प्रतिदिन दुर्बल होते देख कर उसकी सखियाँ एवं परिचारिकाए उससे पूछने लगी —

"हे देवी! आप इस समय दुर्बल क्यो दिखाई देती हो।" तीन बार पूछने पर भी जब रानी ने कोई उत्तर नही दिया तो उन्हो ने जाकर यह वार्ता राजा को कह सुनाई।

यह बात सुन कर राजा भी तुरंत उठ कर रानी के पास गया और दिन प्रतिदिन दुर्बल होते जाने का कारण पूछने लगा। परन्तु तीन बार पूछने पर भी रानी ने जब किसी प्रकार का उत्तर नहीं दिया तो राजा ने उसे अपनी शपथ देकर गंभीरता से पूछा। रानी ने तब अपनी दोहद की वार्ता राजा से कही। सुनकर राजा ने रानी को धीरज देते हुए कहा.—

"तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो, तुम्हारी यह गर्भकालिन इच्छा किसी भी प्रकार जल्दी पूर्ण होजाय ऐसा मै प्रयत्न करूंगा"।

ऐसा कह राजा रानी के पास से उठकर अपनी बैठक मे जाकर दोहद पूरा करने के लिए कोई मार्ग (उपाय) ढूढने लगा।

परन्तु जब बहुत बहुत विचार करने के पश्चात् भी मार्ग न दिखाई दिया तब वह उदास होकर बैठ गया।

इसी समय उसका पुत्र अभय कुमार और मंत्री वहां वंदन करने को आये। पहले जब अभय कुमार राजा के पास आया करता था तब

रानी को प्रतिदिन दुर्बल होते देख कर उसकी सखियां एवं परिचारिकाए उससे पूछने लगीं —

"हे देवी! आप इस समय दुर्बल क्यों दिखाई देती हो।" तीन बार पूछने पर भी जब रानी ने कोई उत्तर नहीं दिया तो उन्हों ने जाकर यह वार्ता राजा को कह सुनाई।

यह बात सुन कर राजा भी तुरत उठ कर रानी के पास गया और दिन प्रतिदिन दुर्बल होते जाने का कारण पूछने लगा। परन्तु तीन बार पूछने पर भी रानी ने जब किसी प्रकार का उत्तर नहीं दिया तो राजा ने उसे अपनी शपथ देकर गंभीरता से पूछा। रानी ने तब अपनी दोहद की वार्ता राजा से कही। सुनकर राजा ने रानी को धीरज देते हुए कहा:—

"तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो, तुम्हारी यह गर्भकालिन इच्छा किसी भी प्रकार जल्दी पूर्ण होजाय ऐसा मै प्रयत्न करूंगा"।

ऐसा कह राजा रानी के पास से उठकर अपनी बैठक मे जाकर दोहद पूरा करने के लिए कोई मार्ग (उपाय) ढूंढने लगा।

परन्तु जब बहुत बहुत विचार करने के पश्चात् भी मार्ग न दिखाई दिया तब वह उदास होकर बैठ गया।

इसी समय उसका पुत्र अभय कुमार और मंत्री वहां वंदन करने को आये। पहले जब अभय कुमार राजा के पास आया करता था तब

सदा सर्वदा राजा उसकी कुशल समाचार पूछता और मंत्री के योग्य उसका स्वागत करता। परन्तु आज ऐसा करने के बदले राजा के कुछ न करते हुए उदास बैठा देख कर अभय कुमार ने उदासी का कारण जानने की इच्छा से ऊंचे स्वर से नमस्कार करके राजा को विचार निद्रा मे जागृत कर पूछाः—

"हे पिताजी! आप इस तरह चिन्तित क्यो दिखाई पड़ते है? राजा ने उसकी (चुल्ल) छोटी माता के दोहद की बात सुनाते हुए कहाः—

अब तो वर्षा ऋतु है नही, तो फिर वर्षा आवे तो कैसे! और दोहद पूरा भी क्यो कर होवे? जब तक इसका दोहद पूरा न होगा तब तक वह अहर्निश चिन्ता से दुर्बल होती हुई सूखती जायगी।" अभय कुमार ने उत्तर दियाः—

"हे पिताजी! आप इस बात की कुछ भी चिन्ता न करिये मैं उनकी गर्भ कालिक इच्छा पूर्ण कर दूगा, । इसकी पूरी तयारी करने पश्चात् मैं आपसे तथा छोटी माता से सूचना करूंगा।" अभय कुमार अपने स्थान पर आकर विचार करने लगे कि मानुषी प्रयत्न से तो यह दोहद पूरा होना संभव नही। किसी विद्या सिद्ध की सहायता से ही वह कार्य पूरा हो सकेगा। यह विचार कर उसने सौधर्म कल्प मे रहने वाले अपने एक देव मित्र को बुलवाने का निश्चय किया। इसके लिए उसने

शुद्ध ब्रह्मचर्य से अष्टम तप को स्वीकार किया। शरीर पर के वस्त्राभूषण, माला, लेप, चंदन और शस्त्र आदि का त्याग कर तीन दिन तक दर्भासन पर बैठकर उसे (मित्र को) बुलाने का तीव्र संकल्प करके वह अपनी पौषध शाला मे बैठा। तप की पूर्णाहुति और संकल्प बल की पूर्ण सीमा पर पहुँचते ही देवमित्र का आसन चलायमान हुआ। तब वह (सौधर्म वासी मित्र देव) अपना आसन चलायमान जानकर अवधि ज्ञान से देखा तो उसे ऐसा अध्यवसाय उत्पन्न हुआ कि इस जम्बू द्वीप के दक्षिण भरत क्षेत्र राजगृह नगर मे मेरा पूर्व परिचित अभयकुमार अष्टम तप करके मुझे याद कर रहा है इससे इसके पास जाना मुझे श्रेय है ऐसा विचार करके

सौधर्म कल्प के ईशान कोन्य मे जाकर वैक्रिय समुद्घात* द्वारा स्थूल पुद्गलो को छोड़ कर सू म पुद्गलो को ग्रहण

---

* वैक्रिय समुद्घात्–कितने ही कारणो को लेकर आत्मा अपने स्थूल शरीर से अपने अंशो को बाहर निकालकर फैला भी लेता है और सकुचित भी करलेता। उसी क्रिया को जैन परिभाषा मे समुद्घाता कहते है। वैक्रिय समुद्घात् शरीर के परिवर्तन के लिये किया जाता है। योग, सूत्र में वर्णित निर्माण चित्त, निर्माण काय की प्रक्रिया से यह मिलती जुलती है ऐसा प्रतीत होता है। वायुपुराण मे भी इसका उल्लेख है। समुद्घात की क्रियाओं के लिए पन्नवणा सूत्र के ३६ वें पाद में विस्तार

र अभय कुमार की अनुकम्पा ॐ वाला अपनी वेगवती गति मार्ग मे आते हुए असंख्य द्वीपो को तेजी से उलांघता हुआ जग्रह की पौपधशाला मे आ पहुँचा। आते ही उसने अभय मार से अपने आने का कारण पूछा, अभय कुमार ने उत्तर या :—

"हे सुहृद्! मेरी छोटी माता धारिणी सगर्भा है। उसे र्षा ऋतु मे फिरने का दोहद हुआ है। परन्तु इस असमय मे र्षा कैसी! यही सोच कर वह दिन प्रति दुर्बल होती जा रही। मेरे पिता—श्रेणिक राजा—भी यह देखकर विशेप चिन्तित हैं। झे भी प्रतीत होता है कि मानुषिक प्रयत्न से यह कार्य संभव

लिखा हुआ है। भगवती सूत्र में दूसरे शतक के दूसरे उद्देशक में भी स वान का वर्णन है।

ॐअभय कुमार मणुकम्पमाणोत्ति अनुकम्पयन् हातस्या ष्टमोपवास रूपं ष्टं वर्त्तत इति निर्विकल्प्यन्तित्यर्थ पूर्वं भवे जन्मनि जनिना जाताया नेहप्रीति प्रियत्वं न कार्यवशादित्यर्थ. वहुमानश्च गुणानुरागस्ताभ्या सका- ञ्जात. शोकचित खेदो विरह सन्यविन यस्यसपूर्वभवजनित स्नेह।

अभय कुमार पर दया करके—अर्थात् मेरे मित्र को अष्टमोपमवास तीन दिन का उपवास) से कष्ट हो रहा है, यह सोचकर उस देवाता हृदय में पूर्व जन्म की प्रीति और वहुमान (गुणानुराग) का स्मरण ोगया इससे मित्र के हित रूप कष्ट उत्पन्न हुआ।

नही। यही करण है जो मैंने तुम्हारा स्मरण किया। इसलिए जिस तरह हो सके तुम इस कार्य को संपन्न करने का प्रयत्न करो"

अभय कुमार की बात सुनकर उस देव ने अपनी दिव्य सामर्थ्य से पानी से भरे हुए बादलों की वैभार पर्वत और उसके आस पास सृष्टि कर दी। थोडी देर में बिजली चमकने लगी और मेघ गर्जना प्रारंभ हो गयी। यह सुनते ही मोर शब्द करने लगे और भिरमिर भिरमिर बरसती हुई वृष्टि मे मेढक टर्र टर्र करने लगे ऐसे वर्षा ऋतु के पूर्ण चिह्न होने के बाद वह देवता अभय कुमार से कहने लगा कि हे देवानु प्रिय ? मैंने तुम्हारी प्रीति * के लिए गर्जन, विद्युत् और जल बिन्दु पाट (बिजली)

---

* भ्रम विध्वंसनकार (अ॰ पृष्ट १७१) लिखते है कि—"अथ इहा अभय कुमार नी अनुकम्पा करी देवता मेह बरसायो, एपिण अनुकम्पा कही ते सावद्य छै निरवद्य छै एनो प्रत्यक्ष आज्ञा बाहिर छै" किन्तु जहां अनुन्कपा का उत्पन्न होना तो शास्त्रकार देवलोक में होना बतलाते है और पाठक उसको पीछे भी पढ़ आये है और यहा जो पानी बरसाने का लेख है, वह देवलोक से आकर अभय कुमार के कहने से पानी बरसाने की क्रिया की है (मूल पाठ ज्ञाता सूत्र अ॰ १)।

अभयं कुमारं एवं वयासी एवं खलु देवाणु प्पिया ! मए तव प्पियट्ठयाए सगज्जिया सफुसिया सविज्जुया दिव्वा पाउस सिरी विउ-

के साथ दिव्य वर्षा ऋतु की शोभा उत्पन्न की है, इससे छोटी माता का अकाल मेघ का दोहद पूर्ण करो। ऐसा सुन कर बहुत ही प्रसन्न चित्त से अभय कुमार ने अपनी चुल्लमाता और पिता राजा श्रेणिक के पास आकर सूचना दी कि वैभार पर्वत पर बादल घिर आये हैं और साथ ही वर्षा भी हो रही है।

विया (ज्ञाता अ० १) अर्थात् देवताने अभय कुमार से कहा कि हे देवानुप्रिय ! मैने तुम्हारी प्रीति के लिये गर्जन, विद्युत् और जलविन्दु पात के साथ दिव्य वर्षा ऋतु की शोभा उत्पन्न की है।

यहा अभय कुमार की प्रीति के लिये मेह बरसाना कहा है अनुकम्पा के लिये नहीं अत अनुकम्पा से मेह बरसाने की बात मूल पाठ से विरुद्ध है।

जैसे गुणों में प्रेम रखने वाले देवता तप और संयम से युक्त मुनि पर अनुकम्पा करके उत्तर वैक्रिय शरीर बना कर उनके दर्शनार्थ हर्ष के साथ आते है और उन देवताओ के गुणानुराग और मुनि पर अनुकम्पा तथा साधु दर्शन को शास्त्र कार वैक्रिय शरीरबनाने और आने जाने की क्रिया करने को बुरा नही किन्तु उत्तम बतलाते हैं क्यों कि गुणानुराग, अनुकम्पा और साधु दर्शन भिन्न हैं और उत्तर वैक्रिय शरीर बनाना तथा आना आदि भिन्न हैं उसी तरह आने जाने की आदि की क्रियाएं भिन्न हैं और अनुकम्पा भिन्न हैं इस लिए आने जाने आदि क्रिया के सावद्य होने पर भी अनुकम्पा सावद्य नहीं होती। अत. अभय कुमार पर देवता की अनुकम्पा को सावद्य कहना भूल का परिणाम है ?

इस समाचार को सुनते ही रानी धारिणी देवी बहुत प्रसन्न हुई और राजा भी उद्वेग रहित हो गया। तत्काल ही ही अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर चतुरंग सेना तयार कराने तथा गंध* हाथी को अगारित कर महल के पास जाकर लाने की

---

* गंध हाथी राजा श्रेणिक का खास हाथी था। श्रेणिक ने जब संपत्ति का विभाजन (हिस्सा) किया तब उसने यह हाथी विट्ठल कुमार को दिया था। अपनी स्त्री के हठ के कारण कोणिक ने वह हाथी अपने भाई विट्ठल कुमार से मागा। जब विट्ठल कुमार ने हाथी देने से इन्कार किया तो कोणिक ने उसे युद्ध करने की धमकी दी। इससे वह वैशाली मे अपने नाना के शरण गया। उसके पश्चात् ही दोनों पक्ष मे लड़ाई हुई चेटक के पक्ष मे काशी के नवमल्ली और नवलच्छी ये अठारह गणराजा थे।

इस महाशिला कटक संग्राममे किसकी जय तथा पराजय हुई इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् महावीर भगवती सूत्र मे कहते है "गोयमा! वज्जी विदेह पुत्ते जइत्था, नव मल्लई, नवलेच्छई, कासी कोसलगा, अट्ठारस्स वि गण रायाओ पराजइत्था" हे गोतम! वज्जी विदेह पुत्र की (कोणिक) जय हुई और नव मल्ली नवलच्छी इन अठारह गण राजाओं की पराजय हुई"।

इस विषय मे भगवती सूत्र के सातवें शतक के नवम उद्देशक मे निरयावलि सूत्र मे, और हेमचन्द्राचार्य के 'महावीर चरित्र' मे १२ वें सर्ग मे सविस्तार वर्णन है।

और संपूर्ण नगर को सजाने की आज्ञा दी।

आज्ञा होतेही क्षण मात्र मे ही हजारो नगर निवासी, राज महल के पास एकत्रित होकर अनेक प्रकार के मधुर वाद्य सुनने लगे। राजा श्रेणिक भी व्यवस्थित रूप मे तैयार कराई हुई सवारियों के साथ वैभार पर्वत की ओर चलपड़ा। रानी भी राजा के साथ हाथी के हौदे पर बैठी हुई थी और राजा रानी मस्तक पर छत्र धारण किये बैठे थे।

सवारी वैभार पर्वत के पास पहुँचते ही जोर से वृष्टि होने लगी। रानी हाथी पर से उतर कर अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक गिरि के ऊपर और आसपास के स्थानो मे तीव्र गति से घूमने लगी। पश्चात् पास के उद्यानो मे से उसने बहुत से सुगंधित पुष्प एकत्रित किये। उनसबों को सूंघती, चारो ओर घूमती हुई जिस धाम धूम और प्रसन्नता से वह आई थी उसी तरह वह अपने निवास स्थान को लौट गई।

जब रानी धारणी का दोहद इस तरह पूरा हुआ तब अभय कुमार ने अपनी पौषध शाला मे आकर देवमित्र का योग्य सत्कार कर उसे विदा दी।

देवमित्र भी पर्वत पर जाकर अपनी मेघ जाल समेट कर अपने स्थान को चला गया। धारिणी देवी भी दोहद पूरा

होने की प्रसन्नता से अपने गर्भ की सावधानी से रक्षा करने लगी और गर्भ की रक्षा (अनुकम्पा)❀ के लिए वह, खाने पीने मे, सोने मे, और दूसरी सब शारीरिक क्रियाओ मे विशेष सावधानी रखने लगी।

❀ गर्भ की रक्षा के लिये ऐसे अनेक उल्लेख जैन सूत्रो मे आते है , इससे यह स्पष्ट मालूम होता है कि उस समय के लोग गर्भ की रक्षा मे कितनी सावधानी रखते थे। जहां संतति शास्त्र और प्रसूति शास्त्र का खूब ज्ञान हो वहा ही ऐसी व्यवस्थाएँ संभव हो सकती है। गर्भिणी और साथ ही साथ गर्भ की रक्षा तथा आरोग्य के लिये उसके खाद्याखाद्य पर विचार इसमे स्पष्ट है। गर्भ का संस्कार करने के लिए गर्भिणी को किस प्रकार की वृत्तियाँ रखनी चाहिए उसके लिऐ भी यहां स्पष्ट उल्लेख है किन्तु —

भ्रमविध्वंसनकार (भ्रमविध्वंसन पृष्ठ १७० पर) ज्ञाता सूत्र का मूल पाठ लिखकर उसकी समालोचना करते हुए लिखते है "अथ ईहां धारणी रानी गर्भिणी अनुकम्पा करी मन गमता आहार जीम्या ए अनुकम्पा सावद्य छे के निरवद्य छे एतो प्रत्यक्ष आज्ञा बाहिरे छे"

भ्रमविध्वंसन कारने जनता को भ्रम मे डालने के लिए ज्ञाता सूत्र का मूल पाठ भी पूरा नही लिखा इसलिए उसका पूरा पाठ और अर्थ लिखकर उसका समाधान किया जाता है।

"तएणं सा धारणी देवी तंसि अकालदोहलंसि विणियंसि णियदोहला तस्स गब्भस्स अणुकम्पणट्ठयाए जयं चिट्ठइ

उसने अति शीत, अति उष्ण, अति मिष्ट, अति तिक्त, अति क्षार, ऐसे शरीर को हानि पहुँचाने वाले कुभोजनों का तथा अतिचिंता, अति शोक, अति दैन्य, अतिमोद, अति भय, और अति परित्रास वगैरे कुवृत्तियों का भी त्याग कर दिया।

इस प्रकार समय व्यतीत होते हुए रानी का भी प्रसव काल

जयं आसइ जयं सुवइ आहारं पियणं आहारेमाणी नाइतित्तं नाइ कडुअं नाइ कसायं नाइ अंबिलं णाइ महुरं जं तस्स गब्भस्स हियं मियं पत्थ तं देसेय कालेय आहार आहारेमाणी णाइचिन्तं णाइ सोग णाइदेण्णं णाइ मोहं णाइ भयं णाइ परितासं ववगयचिन्तासोगमोह भयपरितासा उदुभय भाण सुहेहिं भोयणछायणगन्धमल्लालंकारेहिं तं गब्भं सुहं सुहेण परिवहइ।"

इसके अनन्तर वह धारिणी रानी अकाल दोहदको पूर्ण करके गर्भकी अनुकम्पाके लिये जयणाके साथ खड़ी होती थी। जयणाके साथ बैठती थी। जयणाके साथ सोती थी। मेधा और आयुको बढ़ाने वाला इन्द्रियोंके अनुकूल नीरोग और देशकालके अनुसार न अति तिक्त न अति कटु न अति कषाय न अति आम्ल (खट्टा) न अति मधुर किन्तु उस गर्भके हितकारक, परिमित, तथा पथ्य आहार खाती थी और अति चिन्ता, अति शोक, अति दीनता, अति मोह अति भय तथा अति परित्रास नहीं करती थी। चिन्ता, शोक, मोह, भय और परित्रास से रहित हो कर भोजन, छाया, गन्धमाल्य और अलङ्कारों से युक्त होकर सुखपूर्वक उस गर्भ को वहन करती थी। (यह

भी आपहुँचा ? नव महीने और साढ़े सात दिन पूर होते ही अर्ध रात्रिमे रानी ने एक सर्वांग सुंदर पुत्र रत्न को जन्म दिया। पुत्रोत्पन्न होते ही (धारिणी देवी के निर्विघ्नता से पुत्र प्रसव हुआ) वधाई देने के लिए दासी राजा श्रेणिक के पास शीघ्रता से गई। राजा ने भी उस वधाई को सुनते ही परम प्रसन्न होकर अमूल्य

ज्ञाता सूत्र के उक्त पाठ का अर्थ है)।

इस पाठका नाम लेकर भ्रमविध्वंसनकार कहते है कि धारणीने गर्भ पर अनुकम्पा करके मनवांछित आहार खाया था परन्तु इस पाठमें मनवांछित आहार खाना नहीं बल्कि मनवांछित आहार छोड़ना लिखा है तथा गर्भके हितकारक आहार खाना लिखा है इसलिये "धारिणि के गर्भ पर अनुकम्पा करके मनवांछित आहार खाया था" यह कथन इस मूलपाठसे प्रत्यक्ष विरुद्ध है।

इस पाठ में गर्भ पर अनुकम्पा करके धारणी से अजयणाका त्याग किया जाना लिखा है तथा चिन्ता, शोक, मोह और भय को छोड़ देना लिखा है अत उनसे पूछना चाहिये कि धारिणिने गर्भ पर अनुकम्पा करके जो अजयणाका त्याग किया था जैसे "वव गय चिंता सोग मोह भय परित्तासा" चिन्ता, शोक, मोह, भय और परित्रास आदि छोड़ दिये थे यह अच्छा किया था या बुरा किया था ? यदि अच्छा किया तो धारिणीकी गर्भ पर अनुकम्पा बुरी कैसे हुई ?

इस पाठमे स्पष्ट लिखा है कि धारिणीने गर्भ पर अनुकम्पा करके

वस्त्राभूषण तथा पीढ़ियों तक चलने वाली जीविका का न देकर उसे सदा के लिये दासवृत्ति से मुक्त किया।

पश्चात् राजश्रेणिक ने अपनेकौटुंविक पुरुषों को, मार्ग स्वच्छ करके प्रत्येक चौक मे सुगंधित धूपदानियाँ रखने की तथा सर्व स्थानों में तोरण बाँध कर पुष्पमालायुक्त नगर सजाने की आज्ञा

मोह छोड़ दिया था तथापि भ्रमविध्वंसनकार धारिणीकी गर्भानुकम्पाको मोह अनुकम्पा वतलाते हैं किन्तु जिस अनुकम्पा के होने से मोह छोड़ दिया जाता है वह अनुकम्पा खुद ही मोह अनुकम्पा हो यह किस प्रकार हो सकता है ? इसका पाठक खुद ही विचार करें।

इस पाटमें कहा है कि "धारिणी रानी गर्भ पर अनुकम्पा करके गर्भका हितकारक आहार खाती थी" इस आहार खानेका नाम लेकर गर्भ की अनुकम्पा को सावद्य कहना भी भूल है क्योंकि गर्भका आहार गर्भवतीके आहारके आधीन है यदि गर्भवती आहार न करे तो उसके गर्भ का भी आहार वन्द होनेसे वह गर्भ मर सकता है ऐसी दशामें आहार नहीं करनेवाली गर्भवती को गर्भ हिंसा का पाप लग सकता है उस गर्भ हिंसाकी निवृत्ति और गर्भरक्षाके लिये धारिणीका भोजन करना भी एकान्त पापमें नहीं है।

गर्भवती श्राविका यदि भोजन न करे तो उसके पहले व्रतमें अतिचार आता है क्योंकि अपने आश्रित प्राणीको भूखा मारना पहले व्रत का अतिचार है परन्तु निर्दय जीव इतना भी नहीं सोचते वे गर्भवतीको उपवास करनेका उपदेश देते हैं और गर्भ पर दया न

दी। इसके साथ ही राजगृह और उसके शासनान्तर्गत प्रदेशों की प्रजा उत्सव मे आनंद पूर्वक योग दे सके इसके लिए उसने आने जाने वाले मालपर की चुंगी उठाना, सब प्रकार के कर वसूल न करना जप्तियाँ न करना, दंड न करना और प्रजा का सर्व कर्ज राज्य की ओर से चुका देना आदि बातो की घोषणा प्रकाशित की। इसके पश्चात् राजा ने १८ वर्ण* और उपवर्ण के लोगो

करनेको धर्म मानते है वे प्रत्यक्ष ही शास्त्रविरुद्ध कार्य करा कर गर्भ हिंसाके समर्थक बनते है। भगवती सूत्र (शतक १ उद्देशा ७) मे साक्षात् तीर्थंकर भगवान ने कहा है कि "माताके आहारसे गर्भको आहार मिलता है" अत: जो गर्भवतीका आहार छुडाते हैं वे गर्भस्थ बालकको भूखा मारते है परन्तु सम्यग्दृष्टि मनुष्य कदापि गर्भको दुःख नहीं देते उस पर अनुकम्पा रखते है।

यह बात केवल गर्भके लिये ही नहीं किन्तु अपने आश्रित द्विपद चतुष्पद आदि प्राणियोको भी सम्यग्दृष्टि भूखे नहीं रखते। उनपर अनुकम्पा करते है नही तो उनके पहले व्रतमे अतिचार आता है अत धारिणी रानी की गर्भानुकम्पा को मोह अनुकम्पा और सावद्य अनुकम्पा बताना भूल है।

* अठारह वर्ण और उपवर्ग, मूल मे "अट्ठारस सेणीप्पसेणीओ के ...कारने श्रेणी का अर्थ कुंभकारादि जातय' याने कुम्हारादि जातियों लिया है और प्रश्रेणी का अर्थ तत्प्रभेदरूपा उनके (श्रेणियो के)

को बुलवा कर सारे राज्य मे दश दिन तक खुले उत्सव मनाने की आज्ञा दी ।

यह सब होने पर राजा बाहर की उपस्थान शाला (बैठक) में बैठ कर दस दिनो तक सैंकड़ो हजरो और लाखोके खर्च से दान आदि शुभ कार्यों में खर्च करने और कराने लगा। उस समय राज्य मे बड़े-बड़े अधिकारियो ने तथा नगर निवासियो नें उसको बहुत नजर नज़राने भेट किये ।

उत्सव के दश दिवसो मे से प्रथम दिवस को राजकुमार का जन्मकर्म सस्कार हुआ, दूसरे दिन जागरण का उत्सव हुआ, तीसरे दिन कुमार को सूर्य चंद्र का दर्शन कराया गया। शेष के सात दिनो तक सारे शहर मे संगीत, नृत्य, वाद्य, खेल, नाटक, आदि की धूम मची हुई थी ।

उत्सव समाप्त होते ही राजा श्रेणिक ने अपने मित्रो, जाति बंधुओं, आत्मीयो, स्वजनो, संबधियो, परिजनो, गण-

---

भेद के अर्थ में लिया है। जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति की टीका में इन १८ जातियों में—नव नारू और नव कारू, ऐसे दो भाग। (१) कुम्हार (२) पट्टइल्ल (पटेल) (३) सुवर्णकार (सुनार) (४) सूपकार (रसोइया) (५) गांधर्व (६) काश्यपक (हज्जाम) (७) मालाकार (माली) (कच्छकर (९) तंबोली ये नव नारू हैं (१) चमार (२) यंत्रपीडक (तेली) (३) गाछिय (वलोड़) (४) छिपाय (छींपा) (५) कसकार (कंसारे) (६) सीवंग (सीने वाले दर्जी) (७) गुआर (?) (८) भिल्ल (९) धीवर ये नव कारु हैं ।

नायकों,* सैनिकों, राज्य के समस्त कर्मचारियों, बड़े बड़े सेठ साहूकारों, और नानाप्रकार के कलाचार्यों को निमंत्रित कर अपने निवास स्थान पर बुलवा कर बारहवे दिन उनसबका उत्तम खान दान और धन वस्त्रादि द्वारा सम्मानकर विदा किया।

उस दिन जब सब मेहमान राज सभा मे बैठे हुए थे राजा ने कुमार के नाम करण संस्कार की चर्चा उनके सन्मुख करी रानी को गर्भावस्था मे मेघ वृष्टि मे फिरने का जो दोहद हुआ था उसको बतलाते हुए राजा ने राजकुमार का नाम मेघकुमार रखने की जिज्ञासा की। समस्त सभा ने इसका समर्थन किया। सभा के हर्ष नाद मे कुमार का नाम मेघकुमार रखा गया। पश्चात सभा विसर्जित हुई और आगत समुदाय विदा लेकर अपने अपने घर चले गये। राजा ने नवजात कुमार की रक्षा के लिए महारानी की देखरेख मे पांच धाय रखने की आज्ञा दी। उसके अनुसार कुमार की दूध की व्यवस्था के लिए क्षीरधात्री की, अंगप्रत्यग के योग्य श्रृंगार के लिए मंडन धात्री की, स्नानादि व्यवस्था के लिए मज्जन धात्री की, खेलने के लिए खेलन धात्री की, और गोद मे रखने के लिए अंक धात्री रखने की योजना की।

---

* इस शब्द का संबन्ध गण राज्य के साथ होता है। इसका अर्थ काल मे प्रसिद्धि प्राप्त गण राज्य के नायक होता है।

इन पांच धाय के नीचे देश देशांतर की अनेक दासियाँ थीं। उन में से कितनी ही वर्बर, द्रमिल, सिंहल, अरब पुलिंद, वहल, शवर, पारस आदि* देशों की थी।

अपने अपने देश का वेश धारण करनेवाली ये दासियाँ बालक की मनोभावना को जानने मे बड़ी दक्ष थीं। वे बालक की चेष्टाएँ इंगित, चिन्तित और आकांक्षाओ को भी अच्छी तरह समझ लेती थीं। वे सब देश देशांतरो की भाषाओ तथा अनेक प्रकार की कालाओ के द्वारा बालक के मन को प्रसन्न रखने के कार्य मे भी सुदक्ष थीं। इन दासियो के अतिरिक्त उस अंत पुर मे दूसरे अनेक वर्षधर महत्तर (बाहर रक्षा करने वाले) कंचुकी (बाहर का काम करने वाली दासियाँ) आदि रखी गई थीं।

दिन प्रति दिन—पर्वतो की कदरा मे चंपावृक्ष की वृद्धि की तरह–राजकुमार अनेक प्रकार पूरी सावधानी के साथ लालित पालित और रक्षित होता हुआ, बढने लगा, समय प्राप्त होने पर उसके अन्नप्राशन चंक्रमण, चोलोपनयन आदि संस्कार †

---

* मूल ग्रंथ में उपर्लिखित नामों के सिवाय अनेक नामों का उल्लेख है। वे इस प्रकार हैं —वकुसि, योनक, पल्हविक, इसलिए धोलकिनी, भासिक, लकुसिक, पकवणी, और मुरुंडि।

† संस्कार—जन्म के पश्चात् प्रथम दिन जातकर्म, दूसरे दिन जागरिका, तीसरे दिन चन्द्रसूर्यदर्शन, बारहवें दिन नामकरण,

भी बड़ी धूमधाम से संपन्न किये गये। इस प्रकार अनेक संस्कार से संस्कारित होता हुआ राजपुत्र मेघकुमार आयुष्य में वृद्धि प्राप्त करने लगा जब वह आठ वर्ष का हुआ तब उसे योग्य अवस्था का जान कर शुभ तिथि, करण, और योग को देखकर

पश्चात्, प्रजेमण, चंक्रमण, चूडापनयन और फिर गर्भ से आठवें वर्ष उपनयन इसतरह मेघकुमार के क्रमश संस्कार हुए। सूत्रों मे जहा किसी का जन्म वृत्तांत आता है वहां संस्कारों का भी लगभग यही क्रम होता है। जिस तरह भगवती सूत्र मे (शतक ११ उद्देश ११) महाबल के जन्म प्रसंग पर बतलाया है कि प्रथम दस दिवस तक स्थितिपतिता (कुलाचार के अनुसार होने वाली विधियाँ) फिर चंद्र सूर्य दर्शन, जागरिका, नामकरण, परंगापण (घुटनों से चलना) चंक्रमण, जेमामण (अन्नप्राशन) पिंडवर्धन (अहारवृद्धि) प्रजल्पन, कर्णवेध, संवत्सरप्रतिलेख (जन्मगांठ) चौलापनयन (चूडाकर्म) उपनयन, कलाग्रहण, आदि सस्कार। गर्भाधान से लेकर ये सब संस्कार किये गये थे।

भगवान महावीर के जन्मप्रसंग पर पहले दिन, स्थितिपतिता तीसरे दिन चंद्रसूर्य दर्शन, छठे दिन धर्म जागरिका, ग्यारहवें दिन के सूतक (वृद्धिसूतक) निकलने के बाद दूसरे दिन नामकरण कल्पसूत्रमूल और आवश्यक मे लिखे अनुसार ८ वर्ष से अधिक अवस्था होने पर उपनयन होता है। मूल ग्रंथ मे इन प्रवृत्तियों संस्कार शब्द से नहीं लिखा है, परन्तु ये संस्कार ही हैं इसमें

कलाचार्य के पास ७२ कलाओं* सीखने के लिए भेजा।

किसी प्रकार की भी शंका नहीं हैं। वैदिक परंपराओं में संस्कारों का जो क्रम है उसी से मिलता जुलता हुआ जैन सूत्रों का भी क्रम है। गर्भाधान' पुंसवन, अन्वलोभन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, (प्रथम दिन) नामकरण प्रेङ्खारोहण, दुग्धपान, तांबूल भक्षण, निष्क्रमण, चंद्रसूर्य दर्शन, कटिसूत्रबंधन, कर्णवेध, अंकुरार्पण अन्नप्राशन, (जन्मोत्सव) अब्दपूर्तिकृत्य, चूडाकरण, विद्यारंभ, उपनयन आदि। संस्कारों का यह क्रम वीर मित्रोदय मे संस्कार प्रकाश में भी पुरानी स्मृतियों का आधार देकर बतलाया गया है।

बुद्ध का जातकर्म और नामकरण संस्कार होने का उल्लेख भी बुद्धघोष अपने बुद्ध-चरित्र में करते हैं।

इस पर से यह ज्ञात होता है ये संस्कार और इनकी विधियाँ, इतनी लोकप्रिय होकर प्रचलित हो गई थी कि इनमें किसी प्रकार की साम्प्रदायिकता नहीं रह गई थी। उसकाल के लोगों में इस प्रकार की समभावना थी कि यदि दूसरे संप्रदाय से कोई आवश्यक बात या विधियाँ वर्णित हों तो वे निस्संकोच उन्हें अपने आचरण में ग्रहण कर लें। साम्प्रदायिक द्वेषभाव उस काल मे नही था।

* ७२ कलायें—(१) लेख (लिखने की कला, सब प्रकार की लीपियों में लिखलेना सीकर, कुतेरकर, बुनकर घेरकर, भेदकर, जलाकर और दूसरे में मिलाकर अक्षर बनाना। स्वामी-सेवक, पितापुत्र, गुरुशिष्य, पतिपत्नी, शत्रु मित्र, आदि के साथ परस्पर

पत्र व्यवहार की शैली, लिपियों के गुण दोष का ज्ञान) (२) गणित (३) रूप (मिट्टी, पत्थर, सोना, मणि, वस्त्र और चित्र में रूप निर्माण) (४) नाट्य (अभिनय सहित और अभिनयरहित (५) गायन (६) वादित्र (७) स्वरगत (संगीत स्वर सप्तक का ज्ञान) (८) पुष्करगत (मृदंगादि बजाने का ज्ञान) (९) समताल (गीतादि ताल का ज्ञान) (१०) द्यूत (११) जनवाद (एक प्रकार का द्यूत—जुआ (१२) पाशक (पासा) (१३) अष्टापद (चौपड़) (१४) पुरः काव्य (शीघ्र कवित्व) (१५) दक मृत्तिका (मिश्रित द्रव्यों का पृथक्करणविद्या (१६) अन्नविधि (पाक विद्या) (१७) पानविधि (पानी को स्वच्छ करना तथा उसके गुण दोष से परिचित होना) (१८) वस्त्रविधि (वस्त्रों को पहरने की विधि) (१९) विलेपनविधि (२०) शयन विधि (पलंग बिछोने का नाप और शयन किस प्रकार करना इस विषय का ज्ञान) (२१) आर्या (आर्या छंद के भेद प्रभेद का ज्ञान) (२२) प्रहेलिका (समस्या) (२३) मागधिका (२४) गाथा (२५) गीति (गायन बनाना) (२६) श्लोक (भेद प्रभेद का ज्ञान) (२७) हिरण्य युक्ति (चांदी के आभूषण कहां २ पहिनना इसका ज्ञान) (२८) सुवर्ण युक्ति (सोने के आभूषण कहां २ पहिनना इसका ज्ञान) (२९) चूर्णयुक्ति (स्नान मंजन आदि के लिये चूर्ण बनाने का ज्ञान) (३०) आभरणविधि (३१) तरुणी प्रतिकर्म (युवती के रूप इत्यादि बढ़ाने का ज्ञान) "(३२) स्त्री (३३) पुरुष, (३४) हय

(घोड़ा) (३५) गज (हाथी) (३६) गाय (३७) कुक्कुट (मुर्गा) (३८) छत्र (३९) डंड (४०) असि (तलवार) (४१) मणि (४२) कागणी (रत्न) (३२ से ४३ के लक्षण का ज्ञान)" (४३) वास्तुविद्या (व्यापार) (४४) स्कंधावारमान (सेना के परिमाण का ज्ञान) (४५) नगरमान (नगर बसाने का ज्ञान) (४६) व्यूह (सेना के व्यूह (बनाने का ज्ञान (४७) प्रतिव्यूह (प्रतिद्वंद्वी के व्यूह का ज्ञान) (४८) चार (कटक के आक्रमण का ज्ञान) (४९) प्रतिचार (कटक के आक्रमण से बचने का ज्ञान) (५०) चक्र व्यूह (५१) गरुड़ व्यूह (५२) शकट व्यूह आदि व्यूह रचने का ज्ञान (५३) युद्ध (५४) (५४) नियुद्ध (मल्लयुद्ध) (५५) युद्धाति युद्ध (बड़ी लड़ाई) (५६) दृष्टियुद्ध (५७) मुष्टियुद्ध (५८) बाहुयुद्ध (५९) लतायुद्ध (लता के समान लिपट कर युद्धकरना) (६०) अस्त्र (बाण आदि शस्त्रों का ज्ञान) (६१) असिविद्या (६२)धनुर्वेद (६३)हिरण्यपाक (चांदी बनाने का ज्ञान (६४) सुवर्णपाक सोना बनाना) (६५) सूत्रखेल (डोरियों को तोडकर या जलाकर भी उन्हें टूटी हुई या जली हुई न दिखने देना, पुतले पुतलियों को रस्सियों द्वारा नचाने का खेल) (६६) वस्त्रखेल (कटा हुआ या छोटा वस्त्र इस प्रकार बतलाना या पहिरना कि वह न छोटा व कटा दीखे (६७) नालिका खेल* (एक प्रकार का जुआ) (६८)

*सूत्र-क्रीड़ा का व्याख्यान करते हुए 'नालिका सचार नालादि सूत्राणा अन्यथा अन्यथा दर्शनम्' अर्थात् नली में डाले हुए तारों को भिन्न भिन्न रग के बतलाना इस प्रकार वात्सायन की टीका में लिखा है। इस से ऐसा ज्ञात होता

पत्रच्छेद (पत्तों की गड्डी मे यथेच्छ अंशतक छेद करना) (६९) कटच्छेद्य (वीच, दूर, तथा पंक्तिवद्ध वस्तु को क्रमश छेदना) (७०) सजीव (मूर्च्छा दूर करने का ज्ञान) (७१) निर्जीव (मूर्च्छित करने का ज्ञान) (७२) शकुनरत (शकुन और अवाज़ों का ज्ञान)।

इस प्रकार ७२ कलाओं का उल्लेख समयावाग के ७२ वें समवाय में तथा राज प्रश्नीय मे दृढ प्रतिज्ञा को शिक्षा प्रकरण मे कुछ फेर फार के साथ आते है।

काम सूत्र मे विद्या समुद्देश प्रकरण मे ६४ कलाओं तथा उनका विवरण दिया है। इन ६४ कलाओं मे उपर्लिखित ७२ कलाओं का समावेश प्रतीत होता है उनकी विगत इस प्रकार है —

कामसूत्र — जैन सूत्र की कौनसी कला का उनमें समावेश है

(१) गीत .. .. (५) गायन (७) स्वर्गत

(२) वाद्य . ... (६) वादित्र(८)पुष्करगत (९) समताल

(३) नृत्य . . .. (४) नाट्य

(४) आलेख्य. ... . (३) रूप

(५) विशेष कछेद्य (इसे... (६८) पत्र च्छेद्य (यही व्याख्या इसकी
पत्र छेद भी कहा है — यहा की जा सकती है)
वड़ी जाति के पत्तों
की आकृति वनाने की कला)

है कि नालिका खेल का अर्थ सूत्र-क्रीडा से ही मिलता जुलता होता है। इसलिए वस्त्र खेल और सूत्र-खेल एक ही है और यही अर्थ अधिक सुसगत है।

(६) तंदुल कुसुम बलि-
विकार अनेक रंग
के चावलों से नाना
प्रकार की आकृ-
तियाँ बनाना

(७) पुष्पास्तरण (इसे पुष्प शयन भी कहते है) (२०) शयन विधि

(८) दशनवसनांग राग (दांत और वस्त्र रंगना { [३१] तरुणी प्रति कर्म [१९] विलेपन [१८] वस्त्र विधि

(९) मणि भूमि कर्म (सोने
बैठने के लिए जमीन
बांधना)

(१०) शयन रचना (२०) शयन विधि

(११) उदक वाद्य (जल तरंग) (६) वादित्र

(१२) उदका घात (पानी की पिचकारी से क्रीड़ा करना)

(१३) चित्र योग (कामण)

(१४) माल्य ग्रंथन (माला गूंथना)

(१५) शेखर कापीड़ योजन (फूलों के (३०) आभरणविधि
आभूषणों से शिर गूँथना)

(१६) नेपथ्य प्रयोग (१८) वस्त्र विधि

(१७) कर्णवत्र भंग (शंख आदि से दांत कान आदि के आभूषण बनाना)

(१८) गंध युक्ति (२९) चूर्ण युक्ति

(१९) भूषण योजन.... .... (३०) आभरण विधि
(२०) इन्द्रजाल
(२१) कौचुमार योग (सौभाग्य वर्द्धक और वाजीकरण योग)
(२२) हस्तलाघव (हाथ की प्रवीणता) (३८) पत्रच्छेद्य (६६) कटच्छे
(२३) विचित्र शाक-यूप-लक्ष्य विचार क्रिया (१६) अन्न विधि
(२४) पान कर सरागा सवयोजन (१७) पान विधि
(२५) सूचीवान कर्म (सीने और जोड़ने की कला)
(२६) सूत्र क्रीड़ा (६५) सूत्रखेल (६०) नालिका खेल
(२७) वीणाडमरु वाद्य (६) वादित्र
(२८) प्रहेलिका (२२) प्रहेलिका
(२९) प्रतिमाला
(३०) दुर्वाचक योग (क्लिष्टउच्चारण होने वाले शब्दों के बोलने की कला)
(३१) पुस्तक वाचन
(३२) नाटकाख्यायि का दर्शन
(३३) काव्य समस्या पूरण
(३४) पत्रिकावेत्रपान विकल्प (वेत के खाट आसन आदि बनाने की क्रिया)
(३५) तक्ष कर्म (खुदाईकाम

(३६) तक्षण (सुतार का काम)

(३७) वास्तुविद्या (४३) वास्तु विद्या (४५) नगरनिर्माण

(३८) रौप्यरत्न परीक्षा (४१) मणि (४२) काकणी लक्षण (२७)

(२७) हिरण्य युक्ति (?)

(३९) धातुवाद (२८) सुवर्णयुक्ति (?) (६३) हिरण्य पाक (६४) सुवर्ण पाक

(४०) मणिरागाकर ज्ञान (मणि की खदान जानने और रंगने का ज्ञान)

(४१) वृक्षायुर्वेद (वनस्पति द्वारा औषधि बनाना)

(४२) मेपकुक्कट लावक युद्धविधि (मेंढा, मुर्गा और तीतर लडाना)

(४३) शुक शारिका प्रलापन (तोता मैना सिखाने की कला)

(४४) उत्सादन, संवादन, केश मर्दन में कुशलता (हाथ पांव को दबाना मसलना या मालिश करना तथा बाल संवारने में कुशलता)

(४५) अक्षर मुष्टिका कथन (लघुलीपि या शार्ट हैंड)

(४६) म्लेच्छित विकल्प (जानने वाले के सिवाय दूसरा कोई जान सके ऐसे शब्दों का प्रयोग करना)

(४७) देश भाषा विज्ञान

(४८) पुष्प शकटिका (पुष्पों के मियाने पालकी आदि बनाना)

(४९) निमित्त ज्ञान

(७२) शकुनरुत (३२) स्त्री (३३) पुरुष (३४) हय (३५) गज (३६) गाय (३७) कुक्कुट (३८) छत्र (३९) दंड (४०) असि (४१) मणि (४२) काकणी रत्न इन सब का ज्ञान

(५०) यन्त्र मातृका (सजीव या निर्जीव यंत्रों की रचना करना)

(५१) धारण मातृका (स्मरण शक्ति अवधान कला)

(५२) सपाठ्य (कोई व्यक्ति काव्य बोलता और दूसरा कुछ शब्द सुनने पर आगे की रचना या शब्द उच्चारण करदे इसकला को जैन

संप्रदाय में पदानुसारणी
बुद्धि कहते हैं)

(५३) मानसी काव्य क्रिया (पद्य उत्पन्न आदि आकृति वाले श्लोकों में खाली लिखे हुए स्थान पर शब्दों द्वारा समस्या पूर्ति करना)

(५४) अभिधान कोश (शब्द कोश का ज्ञान)

(५५) छंदोविज्ञान (२१) आर्या (२२) मागधिका (२४) गाथा (२५) गीति (२६) श्लोक

(५६) क्रिया कल्प (काव्य अलंकार) (२७) पुर: काव्य

(५७) छलितकयोग (रूप बदल कर छलने की कला)

(५८) वस्त्र गोपन (६५) सूत्र खेल (६३) वस्त्र खेल

(५९) द्यूत विशेष (१०) द्यूत, (११) जनवाद (१२) पाशक (१३) अष्टापद (१४) नालिका खेल

(६०) आकर्षक क्रीडा (पासों का खेल) (१२) पाशक

(६१) बाल क्रीडन (बालकों के लिए ढेरियाँ बनाने की कला)

(६२) वैनयिकी (अपने को, दूसरों को तथा हाथी आदि पशुओं को सिखाने की कला)

(६३) वैजयिकी (विजय प्राप्ति की कला)

(४६) व्यूह (४७) प्रतिव्यूह (५०) चक्रव्यूह (५१) गरुडव्यूह- (५२) शकटव्यूह (५३) युद्ध (५४) नियुद्ध (५५) युद्धातियुद्ध (५६)

दृष्टियुद्ध (५७) मुष्टियुद्ध (५८) बाहुयुद्ध (५९) लतायुद्ध (६०) अस्त्र (६१) असि युद्ध (६२) धनुर्वेद (४४) स्कंधा वारमान (६४) व्यायामिकी (व्यायाम संबन्धी कला)

जंबुद्वीप प्रज्ञप्ति की टीका में स्त्रियो की ६४ कलाओ के नाम निम्नाकित है —

(१) नृत्य (२) औचित्य (३)चित्र (४) वादित्र (५]मंत्र (६) तंत्र (७) ज्ञान (८) विज्ञान (९) दंभ (१०) जलस्तंभ (११) गीत मान (१२) तालमान (१३) मेघवृष्टि (१४) फलाकृष्टि (१५) आराम रोपण (१६) आकार गोपन (१७) धर्मविचार (१८) शकुन सार (१९) क्रियाकल्प (२०) संस्कृतजल्प (२१) प्रासाद नीति (२२) धर्मरीति (२३) वर्णिका वृद्धि (२४) स्वर्णसिद्धि (२५) सुरभि तैल करण (२६) लीला संचरण (२७) हय गज परीक्षा (२८) पुरुष स्त्री लक्षण (२९) हेम रत्न भेद (३०) अष्टादशलीपि परिच्छेद (३१) तत्काल बुद्धि (३२) वास्तुसिद्धि (३३) कामविक्रिया (३४) वैद्यक क्रिया (३५) कुंभ भ्रम (३६) सारी श्रम (३७) अजन योग (३८) चूर्ण योग (३९) हस्तलाघव (४०) वचन पाटव (४१) भोज्य विधि (४२) वाणिज्य विधि (४३) मुख मंडन (४४) शाली खंडन (४५) कथा कथन (४६) पुष्प ग्रंथन (४७) वक्रोक्ति (४८) काव्य शक्ति (४९) स्फार विविवेश (५०) सर्व भाषा विशेष (५१) अभिधान ज्ञान (५२) भूषण परिधान (५३) भृत्योपचार (५४) गृहाचार (५५) व्याकरण (५६) पर निराकरण (५७) रंधन (५८) केश बंधन (५९) वीणानाद

कलाचार्य ने मेघकुमार को प्रत्येक कला का उसके पाठ, अर्थ और प्रयोग* के साथ शिक्षण दिया। उसमें की मुख्य कलायें निम्नोक्त हैं—

(१) लिखन (२) गणित (३) रूप (४) नाट्य

---

[६०] वितंडा वाद (६१) अंक विचार (६२) लोक व्यवहार (६३) अंत्याक्षरिका [६४] प्रश्न पहेलिका

* प्रयोगसहित—प्राचीन काल में इन सब कलाओं के लिए शास्त्र थे, वाराही संहिता, भरत का नाट्य शास्त्र वात्सायन का काम सूत्र चरक तथा सुश्रुत की सहिताये नल का पाक दर्पण, पाल काप्य का हस्त्यायुर्वेद नीलकंठ की मातग लीला, श्री कुमार का शिल्प रत्न, रुद्रदेव का श्येनिक शास्त्र, मयमत और संगीत रत्नाकर आदि ग्रंथ तो आज भी उपलब्ध हैं। इन कलाओं को प्रथम सूत्रों द्वारा कंठस्थ कराया जाता था पश्चात् उनका अर्थ और प्रयोगात्मक शिक्षण बतलाया जाता था। इसमे मुख्य बात तो यह है कि प्राचीन लोग केवल सिद्धान्त पाठही नहीं कराते थे अपितु वह सिद्धान्त के साथ प्रयोग को बतलाना विस्मृत नहीं करते थे। सिद्धान्त (Theory) और प्रयोग (Practice) दोनों को एक दूसरे से पृथक् नहीं समझते थे। दोनों का साथ २ ज्ञान प्रदान करते थे। ये सब कलाये मनुष्य की कर्मेंद्रिय और ज्ञानेंद्रिय दोनों का विकास करने वाली है। दोनों को विकसित करने के लिए ही इन कलाओं की योजना की गई है। प्राचीन काल में एकांगी शिक्षा नहीं दी जाती थी यह तो निर्विवाद सिद्ध हो ही जाता है।

(५) गायन (६) वादित्र (७) स्वरगत (८) अन्नविधि (९) पानविधि (१०) वास्त्रविधि (११) विलेपनविधि (१२) शयनविधि (१३) छंदशास्त्र (१४) हिरण्ययुक्ति (१५) सुवर्ण युक्ति (१६) चूर्ण युक्ति (१७) आभरणविधि (१८) तरुणी प्रति कर्म (१९) स्त्री पुरुष, हय, गज, गाय, कुक्कुट, और तलवार आदि के लक्षणो की परीक्षा, (२०) वास्तु विद्या, (२१) व्यूह (२२) गरुड़ व्यूह (२३) मुस्टि-युद्ध (२४) वाहु युद्ध (२५) लता युद्ध (२६) अस्त्र वाण आदि विद्या (२७) धनुर्वेद (२८) शकुन विद्या।

मेघ कुमार जब ७२ कलाओ मे निपुण हो गया तब उसे राजा के पास ले जाकर कलाचार्य कहने लगा —

" हे राजन् ! आपका पुत्र मेघ कुमार ७२ कालाओ मे निपुणता प्राप्त कर चुका है "।

यह सुनते ही राजा ने मीठे वचनो से उसका वहुत ही सत्कार किया और विपुल वस्त्र, गद, माल्य, और अलंकार भारी मन्या मे प्रीति पूर्वक दान देकर उसे सम्मान से विदा किया।

इस प्रकार मेघकुमार को अठारह प्रकारकी देशी भाषाओं* तथा सर्व कलाओं मे विशारद, वलवान, साहसिक और

---

* अठारह प्रकार की देशी भाषा—इसके लिए मूल में 'अट्ठारस विहि

भोग समर्थ देखकर राजाने उसके लिए समान वय वाली समान रूप लावण्य और (यौवन वाली अनेक गुण समुदाय तथा सद्वंश जात ८ राजकन्याओ को पसंद किया । प्रत्येक राज

प्पगार देसीभासा विसारए छे' लिखा है टीकाकार ने उसी का अर्थ इस प्रकार किया है ।—

अष्टादश विधि प्रकारा प्रवृत्तिप्रकारा अष्टादशभिर्वा विधिभि. भेदै. प्रचार प्रवृत्तिर्यस्या' सा तथा तस्या देशी भाषाया देश भेदेन वर्णावली रूपाया विशारद अर्थात् देश के भिन्नभिन्न भागों में बोली और लिखी जाने वाली १८ भाषाओं में विशारद । औपपातिक सूत्र में मेघकुमार के प्रसंग पर 'अट्ठारस देसी भासा विसारए' इतना ही लिखा हुआ है । टीकाकार उसके अर्थ में वहां कुछ नहीं लिखते हैं । शब्दश. अर्थ तो यही प्रतीत होता है परन्तु देशी भाषायें कौनसी या वे देश कौन से इसके लिए वहा किसी प्रकार का उल्लेख नहीं है । अठारह प्रकार की लीपियों का उल्लेख प्रज्ञापना सूत्र और सवायाग में मिलता है

(१) ब्राह्मी (२) जवणाणिया (यवनानी) (३) दोसापुरिया (?) (४) खरोष्टी (५) पुक्खरसारिया (पुष्करसरि) (६) भोगवइया (७) पहराइया (८) अंतक खरिया (अल्याक्षर) (९) अक्खर पुट्ठिया (१०) वेणाइया (११) निण्हईया (१२) अंकलिपी (१३) गणित लिपी (१४) गाधर्व लिपी (१५) आयंस लिपी (१६) माहेश्वरी (१७) दोमी लिपी (१८) पोलिन्दी ।

उपरोक्त १८ लीपियाँ ब्राह्मी लीपि के अंतर्गत ही मानी जाती थी ।

कन्या और मेघकुमार के लिए भीतर बाहर से उज्वल, खूब ऊँचे सर्व प्रकार से दर्शनीय, सर्व ऋतुओ मे अनुकूल ऐसे नव राजमहलों का राजा ने निर्माण करवाया और मेघकुमार के महल के चारो ओर आठो महल बनाये। पश्चात् शुभ तिथि, नक्षत्र, करण, और योग प्राप्त होने पर उनके साथ कुमार का परिणग्रहण करवा दिया।

पाणि ग्रहण के समय कुमार को हिरण्य (चाँदी) और सुवर्ण की आठ आठ करोड़ मुद्राये तथा अनेक वाहनो के साथ दासदासियाँ भी साथ मे दी (सात पीढ़ी तक भी खर्च न हो इतना धन दिया) मेघकुमारने उसके आठ हिस्से करके वे हिस्से आठो स्त्रियो को देदिये।

इस प्रकार मेघकुमार अपनी स्त्रियो के साथ गान तान और विलास के द्वारा मानवी भोगो कोभोगता हुआ सब प्रकार के सुख और आनन्द से रहता था। उस समय एकबार, गाँव गाँव

पन्नवणा सूत्र मे वर्णन आता है। विशेषावश्यक की टीका मे उन अठारह लीपियों का नाम दूसरी प्रकार से इसतरह मिलता है —

(१) हंस लिपी (२) भूत लिपी, (३) जक्षी लीपि (४) राक्षसी लीपि (५) उड्डी लीपि (६) यवनी लीपि (७) तुरकी लीपि (८) कीरी लीपि (९) द्रविडी लीपि (१०) सिन्धवीय लीपि (११) मालवीय लीपि (१२) नटी लीपि (१३) नागरी लीपि (१४) लाट लीपि (१५) पारसी लीपि (१६) अनिमिती लीपि (१७) चाणक्य लीपि (१८) मूलदेवी लीपि

भ्रमण करते हुए याने सुख से विहार करते हुए श्रमण भगवान महावीर राजगृह नगर के गुणशील चैत्य मे आकर उतरे।

भगवान महावीर के आने की वार्ता फैलते ही संख्याबद्ध लोक उनके दर्शनो के लिए उलट पड़े। अनेक उग्र* (उग्र पुत्र)† भोग (भोग पुत्र ‡ राजन्य क्षत्रिय, ब्राह्मण, योद्धागण प्रशास्तार § मल्लाकी ¶ लेच्छकी ‖ अन्य

---

*उग्र—रक्षा करने वाले तथा कठोर दंड देने वाले क्षत्रिय उग्र कहे जाते थे।

†भोग—जो क्षत्रिय अवस्था और गुण में वडे होते थे भोग संज्ञा से संबोधित होते थे।

‡ राजन्य—जो क्षत्रिय ऋषभदेव के समवयस्क थे उनको राजन्य कहा है। उपर्युक्त तीनों श्रेणियोंके भिन्न शेप क्षत्रिय सामान्य क्षत्रिय कहे जाते थे। (आवश्यक)

§ प्रशास्तर—धर्मशास्त्र के आध्यापक

¶मल्लाकी—मल्लकी एक वश का नाम है। बौद्ध साहित्य में जहां इसके लिए मल्ला शब्द व्यवहृत हुआ है।

‖ लेच्छकी—यह भी एक वंश का नाम है। बौद्ध साहित्य मे इसके लिये लिच्छवी, और कौटिल्य, अर्थ शास्त्र में लिच्छवीक शब्द उपयोग मे लाया गया है।

कौशल के नव लीच्छकी गणराजाओं का उल्लेख जैन सूत्रों में मिलता

राजागण* ईश्वर† तलवर‡ मांडलिक§ कौटुंबिक¶ इभ्य||

है मज्झिमणिकाय की अट्ठकथा में उनका लिच्छवी नाम पडने का कारण इस तरह बतलाया है कि "उनके पेट में जो कुछ खाया पीया जाता था वह मणिपात्र में मणि की तरह स्पष्ट दिखाई देता था। वे पारदर्शक—निच्छवि (लिच्छवी) थे"।

ज्ञाता धर्म कथा के टीकाकार लिखते हैं कि लेच्छई शब्द का अर्थ किसी स्थान पर लिप्स.—वणिक् (लोभी बनिया) किया है।

* राजा—मांडलिक (करद) राजा

† ईश्वर—युवराज। कितने ही इसका अणिमादि नव सिद्धियाँ से संपन्न व्यक्ति का लेते है।

‡ तलवर—राजाने प्रसन्न होकर जिसे पट्टा (पारितोषक के रूप में जमीन देना) दिया हो ऐसेराजाके समान पुरुष तलवर कहे जाते थे।

§ मांडलिक—जिससे आस पास बसती या गाँव न हो उस स्थान को मडल कहते है। ऐसे स्थान के स्वामी को माडलिक कहते है। इस लिए माडविक शब्द भी आता है वहा इसका मंडप के स्वामी के रूप में दिया है।

¶ कोटुंबिक—अनेक कुटुंबो के आश्रय दाता।

|| इभ्य—जिसके पास धन की इतनी बडी राशि हो कि उसमें बडे से बडा हाथी ढक जाय उसे इभ्य कहते है।

श्रेष्ठी* सेनापति सार्थवाह आदि आर्य† और अनार्य‡ पुरुष बडी संख्या मे महावीर स्वामी के निवासस्थान पर उनके दर्शनार्थ आपहुँचे ।

उस समय राज गृह के गली कूंचो मे हाट वाट मे चौरस्ते मे चौक मे जहाँ देखो वहा श्रमण भगवान महावीरके आने की ही चर्चा झुंड के झुंड लोग कर रहे थे ।

मेघकुमार ने अपने विलास गृह मे से लोगो के इस प्रकार के विशाल जनसमूह को देखकर अपनी कंचुकी से पूछा —

---

* श्रेष्ठी—श्री देवता की मूर्ति के सुवर्ण पट को मस्तक पर बाधने वाले ।

† आर्य—तत्त्वार्थ भाष्य मे आर्य और म्लेच्छ ऐसे दो भेद मानव जाति के बतलाये हैं । उसमे भी आर्यों के चार भेद लिये है । (१) क्षेत्र आर्य,—कर्म भूमि मे उत्पन्न होने वाले (२) जाति आर्य इक्ष्वाकु, विदेह, हरि, ऊबष्ट, ज्ञात, कुरु, बुंबुकाल, उग्र, भोक, राजन्य आदि (पन्नवणा सूत्र मे ऊंबष्ट, कलिद, वैदेह, शेदग, हरित चुचुण ये छह जातियां आर्य गिनी गई है) । (३) कुल आर्य विशुद्ध वंश मे उत्पन्न (पन्नवणा सूत्र मे मे राजन्य, भोक, उग्र, इक्ष्वाकु, नयान और कौरव ये ६ मूलआर्य गिने गये है) ।

‡ कर्म आर्य—यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, प्रयोग कृषि वाणिज्य, आदि के द्वारा जीविकोपार्जन करने वाले (पन्नवणा सूत्र) ।

"आज राजगृह मे ऐसी कौन सी घटना घटित होगई है जिससे झुंड के झुंड लोग उपवन की तरफ दौडे जा रहे हैं ? आज नगर मे इंद्र का, शिव का, वैश्रमण का, नाग का, यक्ष का, भूत का, नदी का, तलाव का, वृक्ष का, चैत्य, पर्वत का, कोई उत्सव है ? क्या आज उद्यान यात्रा अथवा गिरि यात्रा का तो उत्सव नही है ?"

जांच करके कचुकी (अंत पुर और वाहर काम करने वाले पुरुष) ने मेघकुमार से कहा —

"आज राजगृह के वाहर श्रवण भगवान् महावीर पधारे हुए है ! उनके दर्शनो के लिए उत्सुक यह जनता की अति भीड़ है।" यह सुनकर मेघकुमार भी भगवान् के दर्शनो के लिए उत्सुक हुआ और अपना चार घंटो वाला अश्वरथ तैयार करवा कर भगवान् महावीर के निवासस्थान (उतरने) की ओर शीघ्रता से चल पड़ा।

रथ जव गुणशिल चैत्य के पास पहुँचा तव उसने दूर से शिलापट्ट पर बैठे हुए भगवान् महावार के दर्शन किये। दर्शन करते ही वह रथ पर से उतरा और अपने सब राजचिह्न, खड्ग, छत्र, मुकुट, जूते, और चंवर उतार दिये। पश्चात् उत्तरा संग करके दोनो हाथो को जोड़ कर बड़े विनय और मन की एकता के साथ वह भगवान के समीप पहुँचा। तीन वार प्रदक्षिणा और वदन नमस्कार करने के पश्चात् भगवान् के

सन्मुख हाथ जोड़ के बैठ गया । भगवान् ने मेघकुमार तथा वहां बैठे हुए श्रोताओ की भारी भीड़ को सवोधित-उद्देश्य-कर इस प्रकार से विविध धर्म का उपदेश दिया.—

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कुडसामली ।
अप्पा काम दुहाधेणु, अप्पा मे नंदणं वणं ॥२॥

भावार्थः—यही आत्मा (Soul) वैतरणी नदी के समान है। अर्थात् इसी आत्मा को अपने कृत्य कार्यों से वैतरणी नदी में गोता खाने का मौका मिलता है। वैतरणी नदी का कारण भूत यह आत्मा ही है। इसी तरह यह आत्मा नरक में रहे हुए कुटशाल्मली वृक्ष के द्वारा होने वाले दुखों का कारण भूत है। और यही आत्मा अपने शुभ कृत्यो के द्वारा काम-दुग्धा गाय के समान है, अर्थात् इच्छित सुखो की प्राप्ति कराने में यही आत्मा कामदुग्धा धेनु के समान कारण भूत है। और यही आत्मा नंदनवन के समान है। अर्थात् स्वर्ग और मुक्ति के सुख सम्पन्न कराने मे अपने आप ही स्वाधीन है।

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठियं सुपट्ठिओ ॥ ३ ॥

भावार्थः—यही आत्मा दुखों एवं सुखो के साधनो का कर्त्ता रूप है। और उन्हें नाश करने वाली भी यही आत्मा है। यही शुभ कार्य करने से मित्र के समान है और अशुभ

कार्य करने से शत्रु के सदृश हो जाती है। सदाचार का सेवन करने वाली और दुष्ट आचार में प्रवृत्त होने वाली भी यही आत्मा है ।

इसी तरह के भाव गीता मे भी इस तरह दर्शाये गये हैं:—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

अर्थ.—आत्मा से मनुष्य आत्मा का उद्धार करे उसकी अधोगति न करे, आत्मा ही आत्मा का बन्धु है, और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है ।

जीवाऽजीवा य बंधो य पुराणं पावासवो तहा ।
संवरो निज्जरा मोक्खो, सतए तहिया नव ॥

अन्वयार्थ –हे इन्द्रभूति ! [जीवाऽजीवाय] चेतन और जड़ [य] और [बंधो] कर्म [पुराण] पुण्य [पावासवो] पाप और आश्रव [तहा] तथा [सवरो] संवर [निज्जरा] निर्जरा [मोक्खो] मोक्ष [एए] ये [नव] नौ पदार्थ [तहिया] तथ्य [संति] कहलाते है ।

भावार्थ –हे गौतम ! जीव [Soul] जड़ [Devoid of common sense] अर्थात् चेतना रहित बंध, [The relation of the soul and Karma,] अर्थात् जीव और

कर्म का मिलना। पुण्य [Merit that results from good deeds and which leads to happiness] शुभ कार्यों द्वारा संचित शुभ कर्म पाप [Sin, karmic-bond due to wicked deeds] अर्थात् दुष्कृत्य जन्म कर्म बंध। आश्रव [A door, a sluice for the inflow of Karma] अर्थात कर्म आने का द्वार। संवर [The stopping of the inflow of Karmic matter] आते हुए कर्मों का रुकना। निर्जरा [Decay or destruction of Karmas] अर्थात् एक देश कर्मों का क्षय होना। मोक्ष [Salvation] अर्थात् सम्पूर्ण पाप पुण्यों से छूट जाना। एकान्त सुख के भागी होना मोक्ष है।

कुरंग मातंग पतंग भृंग, मीनाहताः पंचभिरेव पंच।
एकः प्रमादी स कथंन हन्यते, यः सेवते पंचभिरेव पंच॥

हरिन राग सुनकर, हाथी स्पर्श सुख के कारण, पतंग दीपक के सुन्दर रूप को देखकर, भौरा रसना के वस होकर, और मछली गंध के कारण अपना प्राण देती है। जब प्राणी एक ही एक इन्द्रिय विषय में फसकर नष्ट होता है, फिर मनुष्य, जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध, इन पांचों विषयों का दास, तो वह क्यो नहीं नष्ट होगा ?

इसलिए मनुष्य को इन विषयो का दास नही होना चाहिए, बल्कि विषयो को अपना दास बनाकर रखना चाहिए। जो पुरुष जितेन्द्रिय होते है, वे विषयो का उचित मात्रा मे, और धर्म की मर्यादा रखते हुए, सेवन करते हैं; और प्रिय अथवा अप्रिय विषय पाकर मनमे हर्ष-शोक नही मानते जैसे –

लाभालाभे सुहे दुक्खे; जीविए मरणे तहा।
समो निंदापसंसासु, समो माणवमाणओ ॥ १२ ॥

जितेन्द्रिय पुरुष ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है। विषयो मे फसा हुआ मनुष्य दुर्गति को प्राप्त करता है ।

धैर्य यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहिनी।
सत्य सूनुरयं दया च भगिनी भ्राता मन सयम ॥
शय्या भूमि तलं दिशोऽपि वसन ज्ञानामृतं भोजनं।
एते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्माद्भयं योगिन ॥

धैर्य जिसका पिता है, क्षमा माता है, शान्ति स्त्री है, सत्य पुत्र है, दया बहन है, संयम भाई है, पृथ्वी शैया है, दिशा ही वस्त्र है, ज्ञानामृत भोजन है। इस प्रकार जिनके कुटुम्बी मौजूद है, उन योगियो (साधुओ) को फिर कोई डर नहीं है।

ललचाने वाले उन वधनो की ओर जाते हुए मन को रोको, क्रोध पर अकुश रखो, मान प्रतिष्ठा को दूर करो; माया

से मन छोड़ो और लोभ का त्याग करो।

भगवान् का इस प्रकार का उपदेश श्रवण कर मेघकुमार अत्यन्त ही हर्षित एव संतुष्ट हुआ। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे उसके अंतर्पट खुल गये हो। उसे हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हुआ। वह बारबार भगवान् महावीर को नमस्कार करता हुआ उनके पास बैठ कर इस प्रकार बोला.—

हे भगवन्। आपका उपदेश मुझे अच्छा लगा है, उसमें मेरी रुचि हुई है, विश्वास हुआ है, और मैं इच्छा करता हूँ कि आपके उपदेशानुसार पुरुपार्थपूर्वक प्रयत्न करके वंधन से मुक्त होजाऊं ? हे भगवन्। जो कुछ आपने कहा वह सब सत्य ही है। हे देवानुप्रिय। मैं अपने माता पिता की सम्मति लेकर फिर आपकी सेवा और सहवास मे आकर आपकी आज्ञानुसार आचरण करूंगा।"

भगवन् ने प्रत्युत्तर मे कहा "हे देवानुप्रिय तुम को सुख हो वैसा आचरण करो और प्रतिवध से दूर होओ।

इस प्रकार की वातचीत के पश्चात् मेघकुमार रथ मे बैठ कर अपने निवास स्थान की ओर शीघ्रता से आया और माता पिता को नमस्कार करके कहने लगा—

"हे मातापिता। आज मै भगवन् महावीर के पास जाकर

उनका उपदेश श्रवण करके आया हूँ । वह मुझे बहुत ही अच्छा लगा है ।

माता पिता यह सुनकर बहुत प्रसन्न होते हुए बोले.—

"तू तो धन्य है, संपूर्ण है, कृतार्थ है, चतुर है, जिससे तेने भगवन् महावीर का धर्मोपदेश सुना और उसमे श्रद्धा प्रकट की।"

मेघकुमार ने कहा—"हे माता पिता ! मुझे भगवन् महावीर के उपदेशानुसार वर्त्ताव करने और उनके सहवास मे रहने की प्रवल इच्छा है, इसलिये मै आपकी आज्ञा लेना चाहता हूँ । कभी न सुना हुआ यह वचन सुनकर माता धारिणी पृथ्वी पर मूर्छित होकर गिर पड़ी, उनका शरीर पसीने से तर बतर होगया । अनेक प्रकार के शीतोपचार से थोड़ी देर मे मूर्छा दूर होते ही वह रोती-रोती शोक विलाप करती हुई बोली —

"हे जाया ! तू मेरा एकमात्र प्रियपुत्र है, मेरे विश्वास का स्थान है, और गृह मे रत्न तुल्य है । हे जाया ! तेरा वियोग क्षणमात्र के लिए भी सहन करना मेरे लिए कठिन है पुत्र ! मेरी तरफ देख और हम दोनो [राजा रानी] जब तक जीवित हैं तब तक इस तरह की कोई इच्छा न करके विपुल भोगो का सेवन कर । हमारी मृत्यु के बाद जब तू

परिपक्क अवस्था का होजाय, वंश वृद्धि समुचित रूप से होजाय, तब सर्वथा निरपेक्ष होकर श्रमण भगवान् महावीर के पास मुंड होकर अणगार वृत्ति को स्वीकार करलेना।"

मेघकुमार बोला—"आपने जो कुछ कहा वह तो सब ठीक है, मनुष्य का जीवन पानी के वुद वुद के समान नाशवान् है, बिजली की चमक के समान अशाश्वत है, तृण के उपर पड़े हुए ओसबिन्दु के समान अनियत है। यह जीवन अनेक उपद्रवों से आक्रान्त, रोगादि अनेक विकारों से स्वत नाशवंत, है। और पहले वा पीछे इस देह को तो छोडना ही है। हम सब मे पहले और बाद मे कौन चल बसेगा इसकी भी किसे खबर नहीं। इस लिए हे माता पिता। आप मुझे आज्ञा दीजिए जिससे मनुष्य भव को सार्थक करने मे मै प्रयत्नशील होऊं। आप ने जो यह कहा है कि "हम जीवे जबतक तू इन मानुषिक कोम आदि का भोग कर" परन्तु पूज्यवर ये काम भोग आदि भी तो अशुचि, अशाश्वत, घृणास्पद, अध्रुव, अनियत, नाशवंत, और पहले या पीछे अवश्य ही त्याज्य है।"

"आप के मन मे संभव है यह भावना हो कि हमारे पास इतना धन है कि सात पीढ़ियों तक खर्च करने पर भी वह समाप्त नहीं होगा परन्तु आप नहीं जानते कि यह द्रव्य

भी नाशवंत है; और इसके पीछे हर समय पर चोर, अग्नि आदि का भय लगा ही हुआ है। प्रथम या पश्चात् वह त्याज्य है ही। इस लिए प्रथम मै नष्ट होऊंगा या वह, यह भी कुछ ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता।"

यह सुन कर मेघकुमार के माता पिता ने सोचा कि लोभ के वश तो इस लड़के के विचार परिवर्तन कठिन ही है, इस लिए इसे कुछ डर बतलाना चाहिए। यह सोच कर के कहने लगे—

"पुत्र! तुझे पता नहीं कि भगवान् के प्रवचन के अनुसार जीवन व्यतीत करना लोहे के चने चबाना है। वत्स यह तो वालू के ग्रास है।

बहते हुए तीव्र गंगा प्रवाह के सन्मुख तैरना है और तलवार की धार पर चलने के समान है। हे जाया! वहां रूखा सूखा खाने को और फाटे टूटे कपड़े पहिनने को; अरण्य मे, श्मशान मे, खंडहर मे,—टूटे फूटे मकान मे रहने को स्थान मिलेगा। ठड और धूप सहनी होगी; भूखे और प्यासे रहना होगा। वात, पित्त, और कफ जन्य विकारो को समभाव से सहन करना होगा। आहार पानी के लिए भी द्वार-द्वार भिक्षा मांगनी पड़ेगी। कम मांगकर केवल एक वार भोजन करना होगा। तो राज कुमार है। तू ये सब घोर कष्ट किस प्रकार सहन

कर सकेगा। माता पिता द्वारा बतलाये गये भय की कथा सुनते ही मेघकुमार ने गंभीरता से उत्तर दिया कि "हे माता पिता! आपने जो कुछ कहा वह ठीक है, परन्तु यह डर तो कायरो के लिए है। जो इस लोभ मे आसक्त—फंसे हुए हैं—और जिसे परलोक की कामना नही वह इस भय से हताश होकर—डर कर—अपने निश्चय से पीछे हट जाता है, परन्तु जो भगवान् के वचन में श्रद्धायुक्त, विश्वासयुक्त, और आदर बुद्धि रखने वाला है वह स्थिर, निश्चित बुद्धि से प्रयत्नशील पुरुप इन भयो से किंचित मात्र भी न डरता हुआ चाहे जैसे असाध्य को भी साधन कर सकता है। इसलिए हे माता-पिता! आप मुझे अशंकित चित्त से श्रमण भगवान महावीर के पास जाकर प्रव्रज्या लेने की अनुमति दे दीजिये।"

माता पिता के इतना समझाने पर भी जब मेघकुमार अपने दृढ सकल्प से न हटा, तब अंत मे उन्होंने उसे कहा "हे पुत्र! और तो कुछ नही परन्तु हम तेरी एक दिन की राज्य श्री का वैभव देखने की अत्युत्कट इच्छा रखते हैं।"।

मेघकुमार ने माता पिता की इस आज्ञा को स्वीकार कर लिया। राजा ने तत्काल ही राज्याभिपेक के लिए आवश्यक सामग्री—जैसे सब प्रकार के जल से पूरित कलश पात्र, सब प्रकार की मिट्टी, पुष्प गध माल्य औपधि आदि पदार्थों को

एकत्रित करना प्रारंभ किया। सब प्रकार की तैयारी हो चुकने के पश्चात् देवी धारिणी इत्यादि महारानियों, मंत्रिगण, गणनायक, दंडनायक, व्यापारी, और अन्य प्रजाजन के साथ मिलकर राजा श्रेणिक ने दुदुंभि नाद के बीच बड़ी धूम धाम के साथ राज कुमार का राज्याभिषेक किया।

तत्पश्चात् भरे दरबार में राजा श्रेणिक ने पुत्र का अभिनंदन करते हुए कहा —'हे नंद! तेरी विजय हो, तेरा जय हो जो जीते नहीं गये हैं उन्हें तू जीत और जीते हुए का रक्षण कर तथा समस्त मगध का आधिपत्य ग्रहण करके राजा भरत की तरह राज्य कर"। अभिनंदन के पश्चात् दरबार में जय-जय शब्द का घोष हुआ।

फिर राजा श्रेणिक और धारिणी माता ने कुमार से पूछा — हम तुझे क्या दें। तेरे हृदय में अब क्या इच्छा है। राजा मेघकुमार ने कहा —"हे माता पिता! मुझे कुत्रिकापण[1]

[1] कुत्रिकापण—यह शब्द कु × त्रिक × आपण इन तीन शब्दों के मेल से बना है। कु = पृथ्वी, त्रिक = तीन स्वर्ग, मृत्यु या पाताल इन तीनों लोकों की वस्तुएँ जहाँ मिल सकें ऐसी आपण = दुकान। वर्तमान समय में भी यूरोप और अमेरिका में जिस प्रकार छोटी से छोटी वस्तु से लेकर हाथी तक एक ही दुकान में मिल सकते हैं उसी प्रकार प्राचीन काल में भी ऐसी बड़ी बड़ी दुकानें हमारे यहां होंगी जहां संसार के समस्त देशों का माल एक ही स्थान पर मिल जाता था।

से एक रजोहरण और दूसरा पात्र मंगवा दीजिए। तथा मेरे बाल कटवाने के लिए काश्यप (नाई) बुलवा दीजिए"

राजा श्रेणिक ने तत्काल ही श्रीगृह से द्रव्य देकर रजो-हरण तथा पात्र मंगवा कर नाई को भी बुलावाया ।

नाई नहा-धोकर तथा शुद्ध वस्त्र पहन कर राजा श्रेणिक की सेवा मे उपस्थित होकर पूछने लगा "आप की क्या आज्ञा है?" राजा श्रेणिक ने उसे सुगन्ध युक्त स्वच्छ पानी से हाथ पांव धोकर मुँह पर सफेद चोकोर वस्त्र वांध कर श्रमणो मे उपयुक्त राजकुमार के वाल काटने की आज्ञा दी।

मेघकुमार का राजा के समान अंतिम दर्शन था, यह जान कर उसकी माता ने रोते रोते वे वाल वड़े सन्मान से इकट्ठे किये। उसने उन्हे सुगंधित जल से धोकर, गो शीर्ष चंदन में मिला कर सफेद वस्त्र मे वांध कर रत्नो के साथ रख कर एक पेटी मे वंद कर दिया। मेघकुमार की सदैव स्मृति आती रहे इस लिए उस पेटी को रानी धारिणी माता ने अपने सिरहाने तकिये के नीचे रखी ।

पश्चात् मेघकुमार ने स्नान करके, नासिका के निश्वास से भी उड़ जाय ऐसे हंस लक्षण (श्वेत) वस्त्र तथा योग्य आभूषण पहन कर शिविका (पालकी) मे वैठ कर माता पिता, कटुंब और पुरजनों के साथ समुदाय के साथ भगवान

अनगारिता (साधुपणा) लेने के लिए इच्छुक है । हे देवानुप्रिय हम आप को उसकी शिष्य भिक्षा* देना चाहते हैं उसे आप कृपया स्वीकार करें ।"

---

*शिष्य भिक्षा—मेघकुमार ने भगवान् महावीर का उपदेश श्रवण करके भगवान् से कहा कि मैं (आपकी आज्ञानुसार जीवन व्यतीत करने के लिए) आपका अनुयायी होने के लिए माता पिता की आज्ञा लेकर आऊं । भगवान् ने उसे कहा कि 'जिस तरह सुख हो' वैसा करो । फिर मेघकुमार और उसके माता पिता मे परस्पर जो वार्तालाप हुआ वह तो ऊपर दिया ही जा चुका है । अत में मेघकुमार की यह इच्छा देख कर माता पिता ने उसे अंतेवासी (अनुयायी) होने की सम्मति दी । मेघकुमार भी इतना मातृपितृ भक्त था कि अंत समय में भी उसने माता पिता की आज्ञा से एक दिन का राज्याभिषेक करवा लिया, फिर राजा श्रेणिक और धारिणीदेवी मेघकुमार को लेकर भगवान् महावीर के पास जाते है और पुत्र को भगवान् के समर्पण करते है । सूत्रों में जहा-जहा दीक्षा लेने वालो का वर्णन आता है वहा सर्वत्र इसी प्रकार का वर्णन आता है । इस से इतना स्पष्ट ज्ञात होता है कि कोई भी उम्मेदवार माता पिता की इच्छा के बिना प्रवज्या (दीक्षा) न लेता था । इतना ही नहीं परन्तु दीक्षा देने वाला भी तब तक उसको स्वीकार नहीं करता था जब तक कि दीक्षित होने वाले बालकों की और कुटुम्बियों की ओर से स्पष्ट शब्दों मे ऐसा करने का आदेश न दिया गया हो ।

पास प्रव्रजित मुंड (साधु) और शिष्य बनकर रहूँगा। तथा आचार गोचर* विनय, वैनयिक, चरण करण, यात्रा† और मात्रा‡ सीखूंगा। श्रमण भगवान् महावीर ने मेघकुमार का कथन श्रमण करके उसे प्रवज्या देकर कहा—"हे देवानुप्रिय! संयम से चलना, बैठना, खाना, बोलना, और सर्व प्राण, भूत, जीव तथा सत्वो के साथ संयम पूर्वक वर्ताव करना। इस विषय में किंचित् मात्र भी प्रमाद या आलस्य नही करना"।

मेघकुमार ने भगवान् का उपदेश अच्छी तरह सुना और उसको स्वीकार किया। अब वह सर्वत्र संमय से रहने लगा।

गुण शिल, चैत्य मे भगवान महावीर बडे समुदाय के साथ ठहरे हुए थे। वहा बहुत से श्रमणों की बैठक थी उसमे मेघ की अंतिम बैठक थी वहा होकर बैठक मे से उठकर श्रमण गण पढने के प्रश्न पूछने, सूत्र गिनने, धार्मिक तत्वो पर विचार करने के लिए और लघुशका शौचादि कार्य के निमित्त भीतर से

---

* आचार गोचर—आचार = ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य का अनुष्ठान। गोचर = फूल को भी त्रास न देते भ्रमर जिस प्रकार उसका रस पान कर लेता है इस तरह किसी का भी कष्ट न देकर उदर निर्वाह करने के लिए भिक्षा प्राप्त करने की पद्धति।

† यात्रा—अच्छी तरह सयम पूर्वक निर्वाह करना।

‡ मात्रा—संयम पालन के लिए परिमित आहार ग्रहण करना।

मेघकुमार के माता पिता के इस तरह कहने पर श्रमण भगवान् महावीर ने शिष्य भिक्षा को स्वीकार किया। पश्चात् मेघकुमार ने भगवान् महावीर के पास से ईशान कोण मे जाकर अपने पहने हुए वस्त्राभूषणो को उतार दिया। उनको लेते हुए रानी धरिणी माता गद्‌गद् और रुद्ध कठ से बोली —

हे जाया! तू यत्न करना, पराक्रमी बनना, और इस कार्य में प्रमाद-आलस्य यत्किंचित भी नही करना हम भी इसी मार्ग को ग्रहण करेंगे।

फिर मेघ कुमार के माता पिता भगवान् का वदन कर पीछे लौट गये।

पश्चात मेघकुमार ने शेष रहे हुए केशो का अपने ही हाथ मे पच मुष्टि लोच किया और भगवान् की तीन प्रदक्षिणा कर, वदन कर प्रणाम पूर्वक इस तरह कहने लगा —

"हे भगवान! यह ससार जल रहा है। प्रचंड रूप से धधक रहा है और जरा मरण से त्रस्त है। जिस प्रकार कोई गृहपति जलते हुए गृह मे मे एक एक अमूल्य वस्तु को बचाने के लिए उठा उठा कर उन्हे बाहर रखता है उसी प्रकार इस जलते हुए ससार मे मे अपने प्रिय और इष्ट आत्मा का उद्धार करने के लिए आपकी शरण मे आया हूं। हे देवानुप्रिय! मै आपके

ास प्रवजित मुंड (साधु) और शिष्य वनकर रहूँगा। तथा
आचार गोचर* विनय, वैनयिक, चरण करण, यात्रा†
और मात्रा‡ सीखूंगा। श्रमण भगवान् महावीर ने मेघकुमार का
कथन श्रमण करके उसे प्रवज्या देकर कहा —"हे देवानुप्रिय।
संयम से चलना, वैठना, खाना, वोलना, और सर्व प्राण, भूत,
जीव तथा सत्वो के साथ सयम पूर्वक वर्ताव करना। इस विषय
मे किंचिन् मात्र भी प्रमाद या आलस्य नही करना"।

मेघकुमार ने भगवान् का उपदेश अच्छी तरह सुना और
उसको स्वीकार किया। अव वह सर्वत्र संमय से रहने लगा।

गुण शिल, चैत्य मे भगवान महावीर वडे समुदाय के साथ
ठहरे हुए थे। वहा वहुत से श्रमणो की वैठक थी उसमे मेघ
की अंतिम वैठक थी वहा होकर वैठक मे से उठकर श्रमण गण
पढने के प्रश्न पूछने, सूत्र गिनने, धार्मिक तत्वो पर विचार
करने के लिए और लघुशका शौचादि कार्य के निमित्त भीतर से

---

*आचार गोचर—आचार = ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य का अनुष्ठान। गोचर = फूल को भी त्रास न देते भ्रमर जिस प्रकार उसका रस पान कर लेता है इस तरह किसी को भी कष्ट न देकर उदर निर्वाह करने के लिए भिक्षा प्राप्त करने की पद्धति।

† यात्रा—अच्छी तरह संयम पूर्वक निर्वाह करना।

‡ मात्रा—संयम पालन के लिए परिमित आहार ग्रहण करना।

बाहर और बाहर से भीतर आया जाया करते थे। उस समय अनजान मे मेघकुमार को उनके हाथ या पैर का संघर्ष होता था तथा आहट और उनके चलने की धूल से उसकी बैठक भी भर गई थी। रात्रि मे भी यही क्रम चलते रहने से उसे एक क्षण के लिए भी नीद नही नहीं आई थी। इसलिए उसके मन मानस इस प्रकार की विचार तरंगे उठने लगी —

"मै राजपुत्र हूँ, जब मै राजभवन मे था तब यही श्रमण गण मेरा आदर सत्कार करते, सन्मान दर्शाते और अच्छी तरह वार्तालाप करते थे। परन्तु जब से साधु (मुंड) हुआ हूँ तब से ये श्रमण न तो मेरा आदर सन्मान करते है, न ठीक तरह से बोलते है, इतना ही नही परन्तु दिन रात मेरी बैठक के सम्मुख आना जाना लगा कर मुझे क्षण मात्र भी विश्राम नही लेने देते हैं। इसलिए प्रात काल होते ही मै श्रमण भगवान् महावीर से पूछ कर अपने घर चला जाऊगा"।

इस तरह विचार कर उसने किसी भी तरह रात्रि व्यतीत की। प्रात काल होते ही वह भगवान महावीर के पास जाकर, तीन प्रदक्षिणा कर, वंदन तथा नमस्कार कर उनके समीप बैठ गया।

मेघ कुमार की खिन्न आकृति से उसके विचारो को ज्ञान द्वारा जानकर भगवान् महावीर बोले —

"हे मेघ! रात्रि में तुझे नींद नहीं लगी। इससे कि ... दाय के अंत में तेरी बैठक होने से, तथा श्रमणों की उधर से बार आने जाने से तुझे नींद नहीं आई है। किन्तु इससे दुःखी या खिन्न चित्त नहीं होना चाहिए।

"हे मेघ! तुझे तो स्मरण नहीं है, पर मैं जानता हूं कि आज से तीसरे भव में, सुमेरप्रभ नामके हाथियों के राजा के ... में वैताढ्य पर्वत की तलेटी के आगे रहता था। वहां तेरे ... तेरी प्रिय हथिनियाँ तथा बच्चे थे। उस जंगल में तू अत्यन्त ...शील और काम भोगों में आसक्त होकर निरंतर प्रिय ...नियों के साथ पहाड़ों में, नदों में, वनराजियों में, ...रिणियों में अनेक प्रकार के विलास करते हुए विचरण किया ...ता था।

"एकबार ज्येष्ठ मास में, अकस्मात् एक भारी आंधी उठी। ...र फल स्वरूप पवन प्रचंड वेग से बहना शुरू हुआ उस समय ... से वृक्ष आपस में रगड़ खाने और टकरा-टकरा कर टूटने लगे। ...रे वन में भयंकर रूप से दावाग्नि लग गई। उस समय अंधकार ... चारों दिशायें व्याप्त होगई, तेरी टोली के सब हाथी और ...थनियाँ घबराहट से चारों दिशाओं में भागते हुए तुमसे ...छूट गई। तू भी दिशा का ज्ञान न होने से भागता-भागता ... कीचड़ भरे हुए तालाब में फंस गया। ज्यों ज्यों उस कीचड़ से

बाहर निकलने की कोशिश करता था, त्यों त्यों उसमे अधिकाधिक गहरा फंसता ही जाता था। ऐसी अवस्था मे कितने ही दिन तुझे व्यतीत करने पड़े।

तुझे पानी भी पीने के लिये नहीं मिला क्योंकि तालाब का पानी भी इतनी दूर था कि तेरी सूंड की वहां तक पहुंच नहीं सकती थी। ऐसी दशा मे तेरे एक प्रतिस्पर्द्धी वैरी हाथी ने अपने तीक्ष्ण दंत शूलो से तुझ पर बड़े वेग से आक्रमण किया। तू उसके दंत प्रहारो से तीव्र वेदना अहर्निश भोगता हुआ उससे वैर लेने की भावना मन मे रखता हुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ। हे मेघ! वह तीव्र वेदना तुझे स्मरण है।

दूसरे जन्म मे तू गंगा के दक्षिण किनारे विंध्या गिरि की तलहटी मे फिर हाथियो का राजा हुआ। उस जन्म मे भी तू उतना ही कामोन्मत्त था। एक बार उस विंध्याचल की तलेटी मे भी भयंकर दावानल सुलग उठा, सारे वनचर प्राणी भयभीत हो चारों दिशाओं मे भागने लगे। तू भी डर से भागता हुआ एक सुरक्षित स्थान पर पहुंच गया।। वहां जाने पर तुझे पूर्व के दावानल का स्मरण हुआ। इस पर विचार किया कि जंगलो मे बारबार दावाग्नि लग जाती है। इसलिए ऐसे प्रसंग पर काम आने लायक एक स्थान तैयार करके रखना चाहिए।

तब तूने गंगा नदी के दक्षिण किनारे एक योजन विस्तार के

भूभाग के वृक्ष पत्ते, लकड़ियाँ, कांटे वेलें पोधो खोदकर दावाग्नि से सुरक्षित कर दिया। उस स्थान के पास ही तू टहलने लगा।

तू जिस स्थान पर रहता था वहां भी कुछ दिनो पश्चात् एक भीषण दावाग्नि सुलग उठी। अपने तयार किये हुए सुरक्षित स्थान की तरफ भागने का विचार करने लगा। इतने ही मे वह स्थान सिह वाघ आदि जगली जानवरो से बिलकुल ही घिर गया था। जब तू वहा गया बहुत कम जगह मे बड़ी कठिनाई से पास पास पैर रख कर खड़ा हो सका।

कुछ देर खड़े रहने पर तेरे शरीर में खुजली हुई। उसे मिटाने के लिए (शांत करने के लिए) तूने अपना एक पैर उठाया। इतने मे भीड से धक्का खाकर घबराते हुए एक खरगोश (शुशला) तेरे उठाये हुए पैर के स्थान पर बैठ गया।

जब तूने अपना पैर नीचे रखने की इच्छा की तुझे उस स्थान पर खरगोश दिखाई दिया। उसे देख कर तेरे चित्त मे विचार उत्पन्न हुआ कि यदि मे अपना पैर नीचे रखता हूँ तो निश्चय ही वह खरगोश कुचल कर मर जायगा यह सोच कर तू अपना पैर ऊंचा कर के ही खड़ा रहा।

हे मेघ! प्राण भूत, जीव और सत्व की अनुकम्पा से तेने

संसार पड़त* किया और मनुष्य आयु का बंध किया। वन

---

*यहां पर भ्रम विध्वंसन कार का मत है कि हाथी के भव में मेघ कुमार का जीव मिथात्वीही था और मिथात्वी रहते हुए ही ससार पर मित किया मगर ऐसा होने से तो सम्यकत्व और अनन्तानुबंधी चोकड़ी का कोई महत्वी नहीं रहता जैसे "अनन्तानुबंधी" शब्द का अर्थ इस प्रकार होता है "अनन्तं भव मनुबध्नात्यविच्छिन्न करोत्येव शीलोऽनन्तानु वन्धी" जो धारा प्रवाह विच्छेदरहित अनत काल तक ससार को उत्पन्न करता है उसे "अनन्तानु वन्धी" कहते। अनन्तानु वन्धी (क्रोध मान, माया और लोभ) का क्षय या ऊपशम नहीं हो जब तक स्यकत्व की प्राप्ति नहीं होती और सम्यक्त्व के बिना संसार पडत हो नहीं सकता क्यो कि —

"जेयाऽबुद्धा महा भाग वीरा असं मत्त दंसिणो
असुद्धं तेसि पर क्कंत सफलं होइ सव्वसो"
(सुयगडाग सूत्र, श्रुत० १ अध्ययन ८ गाथा २२)

तत्व अर्थ को नहीं जानने वाले महाभाग जो (ससार मे पूजनीय) पुरुष वीर और असम्यग्गदर्शी (सम्यग् ज्ञान के रहित) है उनके किये हुए तप, अध्ययन और नियमादिरूप उद्याग सभी अशुद्ध और कर्म वन्ध के ही कारण है।

(और अन्य दर्शनकार 'कठोपनिषद" आदि मे भी ऐसा ही कहा है)

(टीका) "तेषा बालाना यत्किमपि तपो दाना ध्ययननियमादिषु नन्तान्त सुद्यम कृत तद विशुद्ध मवि शुद्धि कारि" अर्थात अज्ञानी

। दावानल अढ़ाई दिन तक सुलगता रहा। इतने समय

मिथ्या दृष्टि) का जो तप, दान, अध्ययन और नियम आदि मे उद्योग
ता है वह सभी अशुद्धी का ही कारण होता है।

इससे यह सिद्ध हुआ की अज्ञानी (मिथ्या दृष्टि) की तपो दानादि
प परलौकिक क्रिया संसार की ही कारण सम्यगदृष्टि की यही क्रियाएं
मोक्ष के हेतु है।

सम्यग दर्शन, ज्ञान, चारित्राणि मोक्षमार्ग। (तत्वार्थ सूत्र)

सम्यग दर्शन, ज्ञान और चारित्र ही मुक्ति के मार्ग है।

(ठा०सूत्र ठा०२) विज्जाए चेव चरणेय चेव, विद्या (ज्ञान) और
चारित्र ये दो ही मुक्ती के मार्ग है क्योंकि ज्ञान और दर्शन सहचारि
(एक साथ रहने वाले) है याने एक दूसरे विना रह नहीं सक्ते
और ज्ञान और दर्शन मे चारित्र हो या न भी हो किन्तु यह भी निश्चित
नहीं है कि चारित्र में ज्ञान और दर्शन अवश्य ही होता है।

बाल तप और अकाम निर्जरा जिन आज्ञा मे नहीं (मुक्ति देने
वाले नहीं) है तथापि उनसे स्वर्ग प्राप्ति हो सक्ती है। अकाम
निर्जरा और बाल तप करने वाले को साक्षात उववाई सूत्र मे
पर लोक का आराधक कहा है 'देवापर लोगस्स आराहगा'
णोइणट्ठे समट्ठे' अर्थात गोतम स्वामी भगवान महावीर से पूछते है कि हे
भगवन जो बाल तप द्वारा देवता हुए है वे परलोक के आराधक
है भगवान ने कहा कि यह अर्थ समर्थ नहीं अर्थात वे आज्ञा के
आराधक नहीं है। इसलिये सिद्ध हुआ कि मिथ्यात्वी (अज्ञानी) कहे
हुए कोई भी जीव संसार पार कर नहीं सकता है इनसे यह सिद्ध [illegible]

तक तू भी तीन पैरो से अखंड खड़ा रहा। जब दावा
शांत हुआ सब प्राणी वहा से जंगल मे चले, पर
जैसे ही तूने जाने की इच्छा से ऊंचे उठाये हुए पैर को नी
करने का प्रयत्न किया उसी समय ढाई दिन तक एकसमान त

कि मेघ कुमार हाथी के भव में संसार पड़त किया है उस व
समकीती ही था। क्योंकि सम्यग् दृष्टि—मिथ्यात्व का नाश सम्यक्
की प्राप्ति यह मोक्ष का पहला पाया चतुर्थ गुण स्थान की प्राप्ति से ह
होता है। भ्रम विध्वंसनकार का कहना है कि सम्यक्त्वी था तो उस
मनुस्या आयु कैसे बाधा इसका समाधान इस प्रकार है कि चतु
गुण स्थान मे चारो (स्वर्ग, नर्क, तिरयंच और मनुष्य) गति
का बंध है। विशिष्ट क्रियावादी और तिर्यंच एक वैमातिक का ही आ
बांधते है, सभी क्रियावादी नहीं। सामान्य क्रियावादि नरक का आ
भी बाधते है। (दशाश्रुत स्कन्ध सूत्र) उत्तर गामिए नेरइए अर्थात्
उत्तर पथ गामी नरक योनि में जन्म पाता है।

भगवती (शतक ८ उद्देश १०) मे चारित्र सहित सात आ
भव कहे है और चारित्र के रहित ज्ञान और दर्शन की आराधना
उत्कृट असरय भव होना कहा है और इसको भ्रम विध्वसन कार
'प्रश्नोत्तर तत्त्वबोध" मे भी स्वीकार किया है।

बीजा सम दृष्टि तणा देश व्रतीना जेह
भव उत्कृष्ट असरय छे न्याय वचन छे एह ॥

(विशेष विवरण के लिये सद्धर्म मंडन मे देखें)

पैरों पर खड़ा रहने के कारण जोर से नीचे गिर पड़ा और तीन दिन तीव्र वेदना भोगकर मरण को प्राप्त हुआ। हे मेघ! करुणा वृत्ति और समभाव वाली सहन शक्तिके कारण इस जन्म मे तू राजा श्रेणिक का पुत्र हुआ। अब तो तू आत्मा की हिंसा करने वाले भोग विलासों को छोड़ कर मेरे पास श्रमण धर्म मे दीक्षित हुआ है। अब तुझमे बल, वीर्य, पुरुषार्थ, पराक्रम और विवेक भी है। "जब पशु योनि में भी तूने इतनी सहन शक्ति और समभाव रखा फिर इस समय अध्ययनादि के लिए आने जाने, वाले श्रमणो के गमनागमन से तू इतना किस प्रकार व्याकुल होगया। तुझे तो यह दीनता शोभा नही देती।" श्रमण भगवान महावीर के इस कथन को सुनकर मेघकुमार का चित्त अत्यन्त प्रफुल्लित होगया और उसके चित्त मे विशेष रूप से प्रमोद, वृत्ति मैत्रीवृत्ति और समभाव का अविर्भाव हुआ। अपने पूर्व भव की वार्ता सुनते ही उसे सब घटनाओं की स्मृति होगई; उसके नेत्रो मे हर्षाश्रु आने लगे, शरीर मे रोमाञ्च हो आया और उनके संयोग से उन भावनाओं मे दुगनी वृद्धि होगई। भगवान को वन्दन और नमस्कार करके इस प्रकार कहने लगा —

"हे भगवन्! आज से मैं अपना शरीर सब श्रमणों

की सेवा में समर्पण करता हूँ" इतना कहकर बारबार भगवान की वंदना कर इस तरह कहने लगा —

"हे भगवन्! श्रमणों की आशातना दोष से निवृत्त होने के लिए मुझको फिर से दीक्षा देकर धर्मोपदेश कीजिए"।

श्रमण भगवान महावीर ने उसे फिर से दीक्षा दी और धर्मोपदेश करते हुए कथन किया —"हे देवानुप्रिय! संयमसे चलना, उठना, खाना, बोलना और सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्वो के साथ संयमपूर्वक वर्ताव करना"। अब मेघकुमार समभाव से रहता है, संयम से आचरण करता है। भगवान् के स्थविरों के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करता है, उग्र संयम तथा तप से मन, वचन और काया को अपने वशवर्ती करता है। अब यह दिन में सूर्याभिमुखी होकर तप्त भूमि में खड़ा रहकर तथा रात्रि में बिना ओढ़े वीरासन से बैठकर ध्यान करता है और इस प्रकार धीरे २ अंतर के गहरे भाग में प्रविष्ट काम, क्रोध, मोह, लोभ, आदि संस्कारों का नाश करने का उग्र प्रयत्न करते हुए अपना तपोमय अन्तिम जीवन भगवान महावीर की अनुमति से राजगृह के विपुल पर्वत पर अनशन कर के देवगति को प्राप्त की। वहां से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मुक्ति प्राप्त करेगा।

कृतज्ञता-प्रदर्शन

जीवन-ग्रंथ-माला की लोकप्रियता का इससे अधिक प्रमाण क्या होगा कि अनेक धर्म भाव प्रेमी महानुभाव 'माला' से प्रकाशित होने वाले ग्रंथों के छपने के पूर्व ही ग्राहक हो जाते है। ग्रंथमाला की ओर से हम ऐसे महानुभावों की नामावली देते हुए उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते है। इसके साथ ही हम अन्य धर्मप्राण महानुभावों से भी प्रार्थना करते है कि दया दान संबंधी सत्साहित्य के प्रचार में वे हमारा हाथ बटावें जिससे हम सेवा करने मे अधिकाधिक योग दे सकें। कम से कम २५ पुस्तकें एक साथ लेने वाले सज्जन का शुभनाम हम इस लिस्ट मे देंगे।

श्रीमान्	सेठ	छगनमलजी गोदावत	छोटी सादड़ी
,,	,,	रिखबदासजी नथमलजी नलवाया	छोटी सादड़ी
,,	,,	गुमानमलजी पृथ्वीराजजी नाहर	छोटी सादड़ी
,,	,,	चम्पालालजी कोठारी	चुरु
,,	,,	धनपतसिंहजी ,,	चुरु
,,	,,	भंवरलालजी रूपावत	जावद
,,	,,	माणकचन्दजी डागा	बीकानेर
,,	,,	मिश्रीमलजी जोरामलजी गोठेवाले	अजमेर
,,	,,	श्रीचन्दजी अब्बाणी	ब्यावर
,,	,,	तनसुखदासजी दूगड़	सरदारशहर
,,	,,	पूनमचन्दजी चण्डालिया	सरदारशहर
,,	,,	[illegible]मलजी दस्साणी	बीकानेर
,,	,,	हीरालालजी सिंघी	बीकानेर
,,	,,	आनंदराजजी सुराणा एशियन इन्स्युरेन्स कंपनी दिल्ली	

जैनरत्न ग्रन्थमाला पुष्प नं० ६

चूलणी-पिता—

"[illegible]"

लेखक—

पं० छोटेलाल यति

जीवन ग्रंथमाला पुष्प नं० ३

चूलणी पिता

लेखक —

पं० छोटेलाल यति

प्रकाशकः—

पं० छोटेलाल यति

जीवन कार्यालय अजमेर

पुस्तक के प्राप्ति स्थानः—

(१) श्री हुकमचन्द्र जी यति रांगड़ी चौक बीकानेर

(२) जैन प्रकाश पुस्तकालय, सुजानगढ़ [बीकानेर]

(३) जैन हितेच्छु श्रावक मण्डल चाँदनीचौक रतलाम

(४) जीवन कार्यालय नाथद्वारा हवेली अजमेर

(५) दी प्रभात प्रिंटिंग वर्क्स अजमेर

मुद्रक —

बलदेवप्रसाद शर्मा

दी प्रभात प्रिंटिंग वर्क्स,

केसरगंज अजमेर।

प्रकाशक—

पं० छोटेलाल यति

जीवन कार्यालय अजमेर

पुस्तक के प्राप्ति स्थान:—

(१) श्री टीकमचन्द जी यति रांगड़ी चौक बीकानेर

(२) जैन प्रकाश पुस्तकालय, सुजानगढ़ [बीकानेर]

(३) जैन हितेच्छु श्रावक मण्डल चाँदनीचौक रतलाम

(४) जीवन कार्यालय नाथद्वारा हवेली अजमेर

(५) दी प्रभात प्रिंटिंग वर्क्स अजमेर

मुद्रक—

बलदेवप्रसाद शर्मा

दी प्रभात प्रिंटिंग वर्क्स,

केसरगंज अजमेर।

चूलणी पिता

वाराणसी नगरी में जितशत्रु नामक राजा राज्य करता था। वहीं पर चूलणी-पिता नामक एक बड़ा गृह-पति अपनी श्यामा नामक भार्या के साथ रहता था। उनके पास आठ हिरण्य कोटी संचित रूप में, आठ व्यापार में और आठ घर संबन्धी कामकाज में लगी हुई थीं। दस दस हजार गायों वाले ८ व्रज उनके पास थे।

यद्यपि भगवान के उपदेश को बहुत से लोगों ने सुना था, परन्तु भगवान का उपदेश सुनने में जो आनन्द चूलणीपिता को आया, वह दूसरे को नहीं आया, या आया भी हो, तो उनका इतिहास मौजूद नहीं है। भगवान का उपदेश श्रवण करने पर चूलणीपिता को वैसा ही हर्ष हुआ, जैसा हर्ष तापपीड़ित को छाया मिलने से, और तृषा पीड़ित को जल मिलने से होता है।

जिस प्रकार अच्छा बलदायक भोजन भी तभी शक्तिदाता होता है, जब कि वह पच जावे, ठीक उसी प्रकार उत्तम उपदेश भी तभी लाभप्रद होता है, जब उसका मनन किया जावे।

बहुत से लोग उपदेशक के समीप आते हैं। उपदेश श्रवण करने के नाम से, परन्तु सुन कर मनन करना तो दूर रहा-उपदेश को अच्छी तरह सुनते भी नहीं। कई लोग वहीं बातें करने लगते हैं, या अनावश्यक हो हल्ला मचा कर आप स्वय भी नहीं सुनते और दूसरे को भी सुनने से वञ्चित रखते हैं। उनका पूर्व पाप, उन्हें भी धर्मोपदेश नहीं सुनने देता तथा दूसरे के सुनने में उनके द्वारा बाधा दिला कर और पाप करवाता है।

भगवान का उपदेश श्रवण करके चूलणीपिता का रोम-रोम विकसित हो उठा। प्रफुल्ल-हृदय चूलणीपिता भगवान को धन्यवाद देकर अपने आप के लिये आज का दिन धन्य मानने लगा। वह विचारने लगा कि भगवान ने जो उपदेश सुनाया है, उसे इसी हर्षावेग में-सर्वथा या किसी अंश में-सार्थक करना उचित है।

जो काम उत्साह से हो सकता है, उत्साह न रहने पर उस रूप में होना कठिन हो जाता है। हाँ, उत्साह से किया हुआ काम होगा ऐसा ही अच्छा या बुरा, जैसा अच्छा या बुरा उत्साह होगा। अर्थात् उत्साह अच्छा होगा, तो काम भी अच्छा होगा और उत्साह बुरा होगा, तो काम भी बुरा होगा। उत्साह के वश बुरा काम-जिसका परिणाम पश्चात्तापपूर्ण हो-तो कभी न करना चाहिए, परन्तु अच्छे काम के उत्साह को निष्फल जाने देना बुद्धिमानी नहीं है। उसे तो सार्थक करना ही उत्तम है। अस्तु।

सब लोगों के चले जाने पर चूलणीपिता ने भगवान महावीर को तीनवार प्रदक्षिणा की और हाथ जोड़ कर भगवान से प्रार्थना करके कहने लगा-भगवन्! आपका धर्मोपदेश सुन कर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। मैं आपके वचनों पर विश्वास करता हूँ और इस निर्ग्रन्थ धर्म पर विश्वास रखता हूँ।

है, वह वैसा ही बन जाता है और उसे फल भी उसकी श्रद्धानुसार ही मिलता है।

यद्यपि धर्म के लिये श्रद्धा और विश्वास की आवश्यक्ता अवश्य है लेकिन विना समझे तथा विना विचारे किसी भी बात का विश्वास कर लेना-उस पर श्रद्धा रखनी अन्ध विश्वास और अन्ध श्रद्धा कहलाती है। अन्ध विश्वास तथा अन्ध श्रद्धा से प्राय लाभ के बदले हानी ही होती है और धर्म के बदले अधर्म का पोषण करना पडता है। इसलिये प्रत्येक बात पर सोच समझ कर विश्वास करना चाहिये। अथवा तर्क वितर्क द्वारा बात का मनन कर उसका अनुभव कर और फिर विश्वास कर उस पर श्रद्धा रखने चाहिए।

धर्म पर श्रद्धा रखना धर्म के समीप पहुँचना है और धर्म का पालन करना उसे प्राप्त करना है। जो आदमी धर्म पर श्रद्धा रख कर उसके समीप पहुँच जाता है वह धर्म के मूल तत्व ज्ञान और दर्शनरूप समाधि को प्राप्त कर चुकता है फिर उसके लिए चारित्र रूपी एक ही काम शेष रहता है। अत धर्म का पूरी तरह पालन न कर सके, तब भी धर्म के प्रति श्रद्धा तो रखनी ही चाहिये।

चूलणीपिता की सरलता पूर्ण प्रार्थना के उत्तर मे भगवान् ने चूलणीपिता से कहा कि जिस धर्म के स्वीकार करने में तुम्हे सुख हो, तुम उसका ही स्वीकार करके पालन करो।

महावीर भगवान् ने आगार धर्म और अणगार धर्म दोनों का उपदेश सुनाया था। चूलणीपिता ने दोनो धर्मों में से आगार धर्म को धारण करना अपनी शक्ति के उपयुक्त समझ कर आगार धर्म के बारह

इसका यह अर्थ नहीं है कि शरीर से अशक्त रहा हो। उसके कहने का यह मतलब है कि मेरी आत्मा इतनी बलवान् नहीं है कि सांसारिक भोगों को त्यागने मे दुःख न माने, किन्तु सुख माने, मै उतना ही त्याग करना उचित समझता हूँ जितना करने को मेरी आत्मा सशक्त है।

चुल्लणीपिता का विचार ठीक ही है। वास्तव मे जिस काम को जो नहीं कर सकता, उस काम को करने की जिम्मेदारी लेना उसकी मूर्खता है।

इनका यह अर्थ नहीं है कि शरीर से अशक्त रहा हो। उसके कहने का यह मतलब है कि मेरी आत्मा इतनी बलवान् नहीं है कि सांसारिक भोगों को त्यागने में दुःख न माने, किन्तु सुख माने, मैं उतना ही त्याग करना उचित समझता हूँ जितना करने को मेरी आत्मा सशक्त है।

चुल्लणीपिता का विचार ठीक ही है। वास्तव में जिस काम को जो नहीं कर सकता, उस काम को करने की जिम्मेदारी लेना उसकी मूर्खता है। काम चाहे हो थोड़ा परन्तु हो सुचारु रूप में। बड़े काम की जिम्मेदारी ले लेना और फिर उस काम को पूरा करने में असमर्थ होना बुद्धिमानी नहीं है। ऐसा करने वालों की दशा धोबी के कुत्ते की तरह हो जाती है जो न घर का ही रहता है न घाट का ही। इसलिए प्रत्येक काम में अपनी शक्ति को देख लेना उचित है, फिर यदि आत्मिक [illegible] ना आत्मिक शक्ति देखने की आवश्यकता है और सामाजिक [illegible] ना सामाजिक शक्ति को देखना चाहिए।

है, वह वैसा ही बन जाता है और उसे फल भी उसकी श्रद्धानुसार ही मिलता है।

यद्यपि धर्म के लिये श्रद्धा और विश्वास की आवश्यक्ता अवश्य है लेकिन बिना समझे तथा बिना विचारे किसी भी बात का विश्वास कर लेना-उस पर श्रद्धा रखनी अन्ध विश्वास और अन्ध श्रद्धा कहलाती है। अन्ध विश्वास तथा अन्ध श्रद्धा से प्राय लाभ के बदले हानी ही होती है और धर्म के बदले अधर्म का पोषण करना पडता है। इसलिये प्रत्येक बात पर सोच समझ कर विश्वास करना चाहिये। अथवा तर्क वितर्क द्वारा बात का मनन कर उसका अनुभव कर और फिर विश्वास कर उस पर श्रद्धा रखने चाहिए।

धर्म पर श्रद्धा रखना धर्म के समीप पहुँचना है और धर्म का पालन करना उसे प्राप्त करना है। जो आदमी धर्म पर श्रद्धा रख कर उसके समीप पहुँच जाता है वह धर्म के मूल तत्व ज्ञान और दर्शनरूप समाधि को प्राप्त कर चुकता है फिर उसके लिए चारित्र रूपी एक ही काम शेष रहता है। अत. धर्म का पूरी तरह पालन न कर सके, तब भी धर्म के प्रति श्रद्धा तो रखनी ही चाहिये।

चूलणीपिता की सरलता पूर्ण प्रार्थना के उत्तर में भगवान् ने चूलणीपिता से कहा कि जिस धर्म के स्वीकार करने में तुम्हें सुख हो, तुम उसका ही स्वीकार करके पालन करो।

महावीर भगवान् ने आगार धर्म और अणगार धर्म दोनों का उपदेश सुनाया था। चूलणीपिता ने दोनों धर्मों में से आगार धर्म को धारण करना अपनी शक्ति के उपयुक्त समझ कर आगार धर्म के बारह

व्रत धारण कराने की ही भगवान से प्रार्थना की। भगवान् ने चूलणी पिता पर यह दबाव नहीं डाला कि तुम अणगार धर्म ही धारण करो। एक तो वीतराग का धर्म ही यह होता है कि जिस की शक्ति है उससे अधिक धर्म के पालन करने की वे प्रेरणा नहीं करते है। दूसरे भगवान जानते है कि मैंने आगार धर्म और अणगार धर्म दोनों ही का उपदेश दिया है, और अणगार धर्म के लिये अपने को अशक्त बताता है, तो फिर इस पर आगार धर्म धारण करने के लिये जोर देना या जबर्दस्ती बाझा डालना ठीक नहीं। यह अपनी शक्ति के अनुसार जिस आगार धर्म को धारण कर रहा है, इस समय के लिये यही श्रेयस्कर है।

चूलणी पिता ने भगवान महावीर से आगार धर्म के बारह व्रतों * को धारण किया। व्रतों को स्वीकार कर चूलणी पिता भगववान का वन्दन नमस्कार करके रथ मे बैठ अपने महल को चला गया।

एक बार एक मायावी और मिथ्यादृष्टिदेव चूलणी पिता को उसके ध्यान और धर्म से भ्रष्ट करने के लिए पिशाच का रूप धारण कर नंगी तलवार लेकर आया और कहने लगा—

"हे दुरंत प्रान्त लक्षण वाले! अप्रार्थितो के प्रार्थी? ह्री, श्री, और कीर्ति से रहित! मोक्ष के पिपासु चूलनी पिता श्रमणोपासक! जो तू तेरे शीलव्रत और गुणव्रत को नहीं छोडेगा तो मै आज और अभी

---

* स्थूल अहिंसा व्रत, सत्यव्रत अस्तेयव्रत ब्रह्मचर्य व्रत, परिग्रह परिमाण, दिशा परिमाण, भोगोपभोग परिमाण, अनर्थदण्ड निवर्तन, सामायिक व्रत देशावकाशिक व्रत पौषध व्रत, और अतिथि संविभाग व्रत।

तेरे बडे लड़के को तेरे पास लाकर, उसे मार कर, उसके मास के टुकडे कर खौलते हुए कड़ाह मे तेरे सामने ही उबालूंगा और उसके रुधिर और मांस को तुझ पर छींटूंगा।

उस देवता के तीन वार ऐसा कहने पर भी चूलणी पिता निर्भयता के साथ आपने ध्यान में तत्पर रहा। इसपर क्रोध से लाल २ होकर देवने उसके सन्मुख उसके वडे लडके को ला उसके टुकडे २ करके खोलते हुए कडाह में डाल कर रक्त और मांस को उसके शरीर पर छिटक दिया।

चूलणी पिताने इस तीव्र वेदना को वड़ी शाति से सहन कर लिया।

देवने उसको अडिग जान कर उसके मझालाले और सब से छोटे लडके को उसके समन्मुख मार कर कडाही मे उबालने को डाल दिया। परन्तु इतना होने पर भी चूलणी पिता अडिग ही रहा।

अन्त मे उसको डिगाने के लिए देवने चूलणी पिता को अपनी भद्रा नाम की माता के टुकडे २ करने की धमकी दी।

देव के इस प्रकार दो तीन वार कहने पर चूलनी पिता को इस प्रकार विचार आने लगे :—"यह अनार्य और अनार्य बुद्धिवाल। ऐसे अनार्य पाप कर्म मेरे सन्मुख करता है। इसने मेरे पुत्रों को तो मेरे सन्मुख मार डाला है; अब यह मेरी देवगुरु समान जननी को भी—जिसने मेरे लिए अनेक कठोर दु:ख सहन किये हैं—उसे भी मार कर उबालने को तैयार हुआ है। इसलिए इसको तो अब पकड ही लेना चाहिए।

ऐसा विचार कर क्रोध करके मारने के लिए दौडा * उसको दौडते हुए देखकर वह देव एकदम आकाश मे उडा और चूलणी पिता के हाथ मे केवल खंभा ही रह गया। खभा हाथ मे आते ही वह बडा कोलाहल करने लगा।

माता की रक्षा के लिये प्रवृत्त होने से चुलणी प्रिय के व्रत नियम का भंग बताना अज्ञान है क्योंकि हिंसक पुरुष पर क्रोध करके उसे मारणार्थ दौडने से चुलणी प्रिय के व्रत नियम नष्ट हुए थे माता की रक्षा का भाव आने से नहीं। देखिये वहा का मूलपाठ और टीका यह है.— (भ्रमविध्वंसन पृष्ठ १५७ से १५८ का उत्तर)

"तएणं सा भद्दा सात्थवाही चुलणी पियं समणोवासयं एवं वयासी नो खलु केइ पुरिसे तव जाव कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ निणेइ २ त्ता तव अग्गओ घाएइ। एसणं केइ पुरिसे तव उवसग्गं करेइ एसणं तुमे विदरिसणे दिट्ठे तंणं तुमं एयाणिं भग्गवए भग्गणियमे भग्ग पोसहे विहरसि"

'भग्गवए' त्ति भग्नव्रत स्थूलप्राणातिपातविरतेर्भावतोभग्नत्वात् तद्विनाशार्थं कोपेनोद्धावनात्। सापराधस्यापिव्रतविषयीकृतत्वात् भग्ननियम कोपोदये नोत्तरगुणस्य क्रोधाभिग्रहरूपस्य भग्नत्वात्। भग्नपोषध अव्यापार पोषरूपस्य भग्नत्वात् (टीका)

उसका कोलाहल सुनकर उसकी माता जाग उठी और उसके पास आकर कहने लगी "हे पुत्र इस तरह कोलाहल क्यों मचा रहे हो !"

इसके अनन्तर उस भद्रा सार्थवाहिनी ने कहा कि हे चुलणी प्रिय ! तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र से लेकर यावत कनिष्ठ पुत्र को घर से बाहर लाकर तुम्हारे समक्ष किसी ने भी नहीं मारा है। यह तुम्हारे पर किसी ने उपसर्ग किया है तुमने जो देखा है वह मिथ्या दृश्य था। इस समय तुम्हारे व्रत नियम और पोषध नष्ट हो गये हैं। यह ऊपर लिखे मूलपाठ का अर्थ है। (मूलार्थ)

इस मूलपाठ में भद्रासार्थवाहिनी ने चुलणी प्रिय के व्रत नियम और पोषध भंग होने की जो बात कही है इसका कारण बतलाते हुए टीकाकार ने यह कहा है—

चूलणी प्रिय श्रावक का स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत भाव से नष्ट हो गया क्योंकि वह क्रोध करके हिंसक को मारने के लिये दौड़ा था। व्रत में अपराधी प्राणी को भी मारने का त्याग होता है। उत्तर गुण—क्रोध नहीं करने का जो अभिग्रह था वह क्रोध करने से नष्ट हो गया और अत्यन्त पूर्वक दौडने से उसका अव्यापार पोषध नष्ट हो गया यह टीका का अर्थ है। (टीकार्थ)

यहां टीकाकार ने व्रत नियम और पोषध भंग का कारण बतलाते हुए यह स्पष्ट लिखा है कि "हिंसक पर क्रोध करके मारनार्थ दौड़ने से चुलणी प्रिय के व्रत नियम और पोषध नष्ट हुए थे" मातृरक्षा का भाव

चूलणी पिता ने उसे सब देखी हुई घटना का विवरण सुनाया। माता ने कहा "पुत्र ! इसओर और यहां कोई भी मनुष्य आया नहीं। किसी को व्रत से डिगाने के लिए मारा या कष्ट दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि तूने कोई भयानक दृश्य देखा है और इसी कारण तू अपने व्रत नियम पौषध से चलित हो गया है। इसलिए तू उनकी आलोचना कर और फिर से उनका स्वीकार कर। जिस तरह तू पूर्व मे रहता था उसी तरह रह।

आने मे व्रत नियम और पोषध भंग होना नहीं कहा है अतः चुलणी प्रिय के हृदय मे मातृ रक्षा के भाव आने मे और मातृ रक्षार्थ प्रवृत्त होने मे उसके व्रत नियम और पोषध का भंग बताना भूल है।

भीषण जी ने माता की अनुकम्पा करने मे चुलणी प्रिय का व्रत भंग होना कहा है। जैसे —

"इम सुणने चुलणी पिता चल गयो, माने राखण रो करे उपाय रे।
जो पुत्र सनार्य कहे जिसा, आल राखूं ज्यों न करे घात रे।
जो माता बचावण उठियो, झगरे थांभो आयो हाथ रे॥
अनुकम्पा आणी जननी तणी, तो भाग्या व्रत ने नेम रे।
ऐसी मोह अनुकम्पा जननी, तिण मे धर्म कहीजे केम रे।"

(अनुकम्पा विचार ढाल ७ कडी ३५)

उनके कहने का भाव यह है कि किसी मरते प्राणी की प्राणरक्षार्थ अनुकम्पा करना मोह अनुकम्पा है चुलणी प्रिय ने माता की रक्षा के लिए अनुकम्पा की थी इसी से उसका व्रत भंग हुआ क्योंकि वह मोह

चूलणी पिताने बड़ी विनय से माता के कथन को स्वीकार किया, और अपने तोड़े हुए नियम का प्रायश्चित कर उनका फिर से स्वीकार किया तथा पूर्ववत ही रहने लगा। श्रावक-धर्म को पालन करते हुए बहुत

अनुकम्पा थी। इनकी यह प्ररुपणा शास्त्र विरुद्ध है। टीका के प्रमाण से भी पहले बतला दिया गया है कि क्रोधित होकर हिंसक के मारणार्थ दौड़ने से चुलणी प्रिय का व्रत नष्ट हुआ था माता की अनुकम्पा से नहीं क्योंकि व्रत पोषध के समय श्रावक को हिंसा का त्याग होता है अनुकम्पा का त्याग नहीं होता अत हिंसा के भाव आने से ही व्रत भंग हो सकता है अनुकम्पा के भाव आने से नहीं। भीषण जी ने सामायक और पोषध के समय अग्नि सर्पादिका भय होने पर जयणा के साथ निकल जाने की आज्ञा दी है। जैसे कि उन्होंने लिखा है.—

"लाय सर्पादिकरा भयथकी, जयणासूं निसर जाय जी। राख्या ते द्रव्य ले जावता सामाइरो भंग न थाय जी पोपाने सामायक व्रतना सरीखा छै पच्चक्खाणजी पोपाने सामायक व्रत में, या दोया में सरीखा आगारजी" (श्रावक धर्म विचार नवम व्रत की ढाल)

इस ढाल मे भीषणजी ने यह आज्ञा दी है कि "अग्नि सर्पादिका भय होने पर श्रावक यदि जयणा के साथ निकल जाय तो उसका व्रत नष्ट नहीं होता।"

यदि सामायक और पौषध के समय अनुकम्पा करना बुरा है तो अग्नि सर्पादिका भय होने पर श्रावक जयणा के साथ कैसे निकल सकता है? क्योंकि यह भी तो अपने ऊपर अनुकम्पा ही करता है। यदि कहो

समय व्यतीत हो चुकने पर एक दिन उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि यह सांसारिक धन वैभव तो यहीं रह जावेगा, साथ न जावेगा। साथ तो केवल धर्म ही जावेगा। इसलिए मुझे उचित है, कि मैं सब स्वजन सम्बन्धियों के सन्मुख, घर-गृहस्थी का भार अपने बड़े लड़के को सौंप—पौषध-शाला में रहते हुए—आत्मा का, निरंतर धर्म-चिंतन में लगा दूं। अब मेरे लिए, ऐसा ही करना श्रेयस्कर है।

कि अपने पर अनुकम्पा करने से व्रत भंग नहीं होता किन्तु दूसरे पर अनुकम्पा करने से होता है इस लिये सामायक और पोषध में अपनी अनुकम्पा के लिये जयणा के साथ निकल जाने में कोई दोष नहीं है तो फिर सुरादेव का व्रत भंग क्यों हुआ था क्योंकि उसने किसी दूसरे पर अनुकम्पा नहीं करके अपने पर अनुकम्पा की थी। देखिये वह पाठ यह है.—

"तएणं से सुरादेवे समणोवासए धन्नं भारियं एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिए! केवि पुरिसे तहेव कहइ जहा चुलणी पिया। धन्नाविभणइ—जाव कणीयसं नो खलु देवाणुप्पिया! तुब्भंकेऽवि पुरिसे सरीर गांसि जमग समगं सोलस रोगायंके परिपक्खिवइ। तएणं केवि पुरिसे तुब्भं उवसग्गं करेइ सेसं जहा चुलणी पियस्स तहा भणइ" (उपासक दशांग अ० ४)

इसके अनन्तर उस सुरादेव श्रमणोपासक ने धन्ना नामक अपनी भार्या से अपना सारा वृत्तान्त चूर्णी प्रिय श्रावक के समान ही कह

ऐसा विचार करके गृह कार्य का भार, अपने बड़े लडके को सौंप दिया और आप—इस ओर से स्वतन्त्र हो—श्रावक की ग्यारह प्रतिज्ञाएँ स्वीकार कर पौषध-शाला में धर्म कार्य करते हुए रहने लगा। बहुत दिनों तक तन-मन से धर्म की आराधना करता रहा। अन्त में, उसने सन्धारा (संलेखना) कर लिया— अर्थात् समस्त खाद्य पदार्थों को

सुनाया। यह सुन कर धन्ना ने कहा कि हे देवानुप्रिय! किसी ने भी तुम्हारे ज्येष्ट पुत्र से लेकर यावत् कनिष्ट पुत्र का नहीं मारा है और कोई भी तुम्हारे शरीर में एक ही साथ सोलह रोग नही डाल रहा था किन्तु यह किसी ने तुम्हारे ऊपर| उपसर्ग किया है। शेप बातें चूर्णीप्रिय की माता के समान धन्ना ने अपने पति से कही। अर्थात "तुम्हारा व्रत नियम और पौपध इस समय भंग हो गये' यह धन्ना ने अपने पति से कहा।

यहाँ मूलपाठ मे चूर्णी प्रिय श्रावक के समान ही सुरादेव श्रावक का व्रत नियम और पोपध भंग होना कहा गया है अत. उनसे पूछना चाहिये कि सुरादेव का व्रत नियम और पोपध क्यों भग हुए" ?। सुरादेव ने अपनी अनुकम्पा की थी दूसरे की नहीं की थी, और अपनी अनुकम्पा से व्रत नियम और पोपध का भग होना भीपण जी ने भी नही माना है फिर सुरादेव के व्रत नियम और पोपध भग होने का क्या कारण है ?। यदि कहा कि सुरादेव के व्रत नियम और पोपध अपनी अनुकम्पा के कारण नही नष्ट हुए किन्तु अपराधी का मारणार्थ क्रोधित होकर दौडने मे नष्ट हुए तो फिर यही बात चूर्णी प्रिय श्रावक के विपय

त्याग कर, धर्म के लिये शरीर उत्सर्ग कर दिया। समाधि में रहते हुए, काल धर्म पाकर वह सौधर्म कल्प के अरुणप्रविमान में देवत्व को प्राप्त हुआ। वहां से वह महाविदेहवास पाकर वह सिद्ध बुद्ध और मुक्त होवेगा।

में भी तुमको मानना चाहिये। चूर्णी प्रिय और सुरादेव के सम्बन्ध में आये हुए पाठों में बिलकुल समानता है केवल भेद इतना ही है कि चूर्णी प्रिय ने अपनी माता पर अनुकम्पा की थी और सुरादेव ने अपने ऊपर की थी। यदि माता के ऊपर अनुकम्पा करने से चूर्णी प्रिय का व्रत भंग होना मानते हो तो फिर सुरादेव का अपने पर अनुकम्पा करने से व्रत भंग मानना पड़ेगा और जैसे चूर्णी प्रिय की मातृ अनुकम्पा को सावद्य कहते हो उसी तरह सुरादेव की अपनी अनुकम्पा को भी सावद्य कहना होगा ऐसी दशा में भीषण जी ने उक्त ढाल में सामायक और पोषध में अपने पर अनुकम्पा करके अग्नि सर्पादि के भय से बचने के लिए यतना के साथ जो निकल जाने की आज्ञा दी है वह बिलकुल मिथ्या सिद्ध होगी अतः अपनी अनुकम्पा को उक्त मतानुयायी सावद्य नहीं कह सकते अतः जैसे सुरादेव की अपनी अनुकम्पा सावद्य नहीं थी और उससे व्रत नियम तथा पौषध नष्ट नहीं हुए थे उसी तरह चूर्णी प्रिय की भी माता के ऊपर अनुकम्पा सावद्य नहीं थी और उससे उसके व्रत नियम भी नष्ट नहीं हुए थे इसलिये चूर्णी प्रिय का उदाहरण देकर अनुकम्पा को सावद्य बतलाना भूल है।

कृतज्ञता-प्रदर्शन

जीवन-ग्रंथ-माला की लोकप्रियता का इससे अधिक प्रमाण क्या होगा कि अनेक धर्म भाव प्रेमी महानुभाव 'माला' से प्रकाशित होने वाले ग्रंथों के छपने के पूर्व ही ग्राहक हो जाते हैं। ग्रंथमाला की ओर से हम ऐसे महानुभावों की नामावली देते हुए उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हैं। इसके साथ ही हम अन्य धर्मप्राण महानुभावों से भी प्रार्थना करते हैं कि दया दान द्वारा सत्साहित्य के प्रचार में वे हमारा हाथ बटावें जिससे हम सेवा करने में अधिकाधिक योग दे सकें। कम से कम २५ पुस्तकें एक साथ लेने वाले सज्जन का शुभनाम हम इस लिस्ट में देंगे।

श्रीमान्	सेठ	ज्ञानमलजी गोदावत	छोटी सादड़ी
,,	,,	रिखबदासजी नथमलजी नलवाया	छोटी सादड़ी
,,	,,	गुमानमलजी पृथ्वीराजजी नाहर	छोटी सादड़ी
,,	,,	चम्पालालजी कोठारी	चुरु
,,	,,	धनपतसिंहजी ,,	चुरु
,,	,,	भँवरलालजी रूपावत	जावद
,,	,,	माणकचन्दजी डागा	बीकानेर
,,	,,	मिश्रीमलजी जौरीमलजी लोढ़ा	अजमेर
,,	,,	श्रीचन्दजी अब्बाणी	ब्यावर
,,	,,	तनसुखदासजी दूगड़	सरदारशहर
,,	,,	खूबचन्दजी चण्डालिया	सरदारशहर
,,	,,	नथमलजी दस्साणी	बीकानेर
,,	,,	हीरालालजी सिंघी	बीकानेर
,,	,,	अनंदराजजी सुराणा	एशिन एश्युरेन्स कंपनी दिल्ली

एक पंथ दो काज

क्या आप चाहते हैं कि हमारा जीवन सफल बने?

सफल जीवन बनाने के लिये सत्संग और सद्ग्रंथों का विमर्शन ही परमौषधि है। सत्संग तो भाग्य से ही मिलता है पर श्रेष्ठ पुस्तकों का चयन तो आपको हर जगह हर समय सन्मित्र की भाँति उत्तम सलाह देता रहेगा, सफल जीवन के लिये—राजनैतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, एवं साहित्यक ग्रंथों का अध्ययन कीजिये और जैन समाज में क्रान्ति फैलाने वाला **दयादान** सम्बन्धी साहित्य पढ़िये। इस के लिये आप और अपने इष्टमित्रों को जीवन-ग्रंथमाला के सदस्य बना कर जीवन ज्योति जगाइये।

उद्देश्य—नवयुवकोपयोगी साहित्य, आध्यात्मिक तथा प्राचीन ग्रंथ, इतिहास, कोष, **दया दान विचार**, नवयुग सन्देशादि का निर्माण करना।

(१) ५) रुपये दीजिये और तीन साल के बाद ५॥) लीजिये। तथा आज से स्थायी ग्राहक का लाभ भी उठाइये।

(२) ५) रुपये पुस्तकों के लिये पेशगी देने वाले को ३।) की पुस्तकें मिलने के बाद स्थायी ग्राहक भी समझे जावेंगे।

(३) १) रु० जमा कराने वाले सज्जन स्थायी ग्राहक समझे जायँगे, उन्हें सब पुस्तकें पौन मूल्य में मिलेंगी तथा पुस्तक छपने की सूचना मिलती रहेगी।

नोट १-एक रुपये से कम को वी० पी० नहीं भेजी जायगी।

२-एक रुपया जमा कराने पर भी पूज्य श्री के व्याख्यान और माला की पुस्तकें बुक पोस्ट से मिलेंगी, इससे वी० पी आदि के व्यय से बचेंगे।

पं० **छोटेलाल यति**, जीवन कार्यालय, अजमेर.

प्रार्थना

उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है ।
जो जागत है वो पावत है, जो सोवत है वो खोवत है ॥
टुक नींद से अँखियाँ खोल ज़रा, ओ! ग़ाफिल रब से ध्यान लगा ।
ये प्रीत करन की रीत नहीं, सब जागत है तु सोवत है ॥
नादान भुगत करनी अपनी, ओ पापी! पाप में चैन कहाँ ।
जब पाप की गठरी शीश धरी, फिर शीश पकड क्यों रोवत है ॥
जो काल करे वो आज ही कर, जो आज करे वो अब करले ।
जब चिडया खेती चुग डारी, फिर पछतावे क्या होवत है ॥

प्रकाशक—

जीवन कार्य्यालय, अजमेर

कृतज्ञता-प्रदर्शन

जीवन-ग्रंथ-माला की लोकप्रियता का इससे अधिक प्रमाण क्या होगा कि अनेक धर्म भाव प्रेमी महानुभाव 'माला' से प्रकाशित होनेवाले ग्रंथों के छपने के पूर्व ही ग्राहक हो जाते हैं। ग्रंथमाला की ओर से हम ऐसे महानुभावों की नामावली देते हुए उन्हे हार्दिक धन्यवाद देते हैं। इसके साथ ही हम अन्य धर्मप्राण महानुभावों से भी प्रार्थना करते हैं कि दया दान द्वारा सत्साहित्य के प्रचार में वे हमारा हाथ बटावें जिससे हम सेवा करने में अधिकाधिक योग दे सके।

श्रीमान्	सेठ	छगनमलजी गोदावत	छोटी सादड़ी
,,	,,	रिखवदासजी नथमलजी नलवाया	छोटी सादड़ी
,,	,,	गुमानमलजी पृथ्वीराजजी नाहर	छोटी सादड़ी
,,	,,	घेवरचन्दजी जामड़	किशनगढ़
,,	,,	छीतरमलजी मिलापचन्दजी दरड़ा	मदनगञ्ज
,,	,,	लाभचन्दजी चौधरी	जावद
,,	,,	भँवरलालजी रूपावत	जावद
,,	,,	सोभालालजी मोड़ीवाला	जावद
,,	,,	मिश्रीमलजी जौरीमलजी लोढ़ा	अजमेर
,,	,,	श्रीचन्दजी अब्बाणी	ब्यावर
,,	,,	तनसुखदासजी दूगड़	सरदारशहर
,,	,,	खूबचन्दजी चण्डालिया	सरदारशहर
,,	,,	नथमलजी दस्साणी	बीकानेर
,,	,,	हीरालालजी सिंघी	बीकानेर

॥ ॐ ॥

जीवन-ग्रन्थ-माला—पुष्प नं० २

प्रार्थना
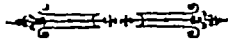
संग्रहकर्त्ता—

पं० छोटेलाल यति

प्रथमावृत्ति ४००० | सन् १९२४ | मूल्य एक आना

प्रकाशक—
जीवन कार्य्यालय,
अजमेर
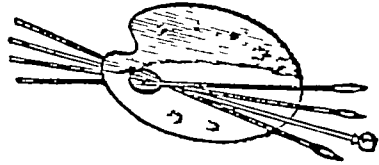
मुद्रक—
आदर्श प्रिन्टिंग प्रेस,
अजमेर

॥ ॐ ॥

॥ श्री महावीरायनमः ॥

॥ अथ चौबीसी पद ॥

दो०—कर्म्म कलंक निवारने, थया सिद्ध महाराज ।
मन वचन काये करी, वन्दुं तेने आज ॥
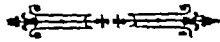
१—श्रीऋषभदेव स्तवन

(उमादे भटियाणी एदेशी)

श्री आदीश्वर स्वामी हो, प्रणमू सिरनामी तुम भणी ।
प्रभू अंतर जामी आप, मोपर म्हैर करीजे हो, मेटो जे चिन्ता मनतणी ॥
म्हारा काटो पुराकृत पाप, श्री आदीश्वर स्वामी हो ॥ टेर ॥१॥
आदि धरम की कीधी हो, भर्तचेत्र सर्पणी काल में ।
प्रभु जुगला धरम निवार, पहिला नरवर १ मुनीवर हो २ ।
तीर्थंकर ३ जिनहुआ ४ केवली ५ । प्रभु तीरथ थाप्यों चार श्री० ॥२॥
मा "मरु देव्या" थारी हो, गज हौदे मुक्ति पधारियों ।
तुम जनम्या ही प्रमाण, पिता "नाभिम्हाराजा" हो ।
भव देव तणो करी नर थया, प्रभु पाम्यां पद निरवाण ॥श्री०॥ ३ ॥

भरतादिक सौ नंदन हो, वेपुत्री "ब्राह्मी" "सुंदरी"।
प्रभू ए थारां अंग जात, सघला केवल पाया हो।
समाया अविचल जोत में, कांइ त्रिभुवन में विख्यात ॥श्री०॥ ४ ॥
इत्यादिक बहु तारया हो, जिन कुल प्रभु तुम ऊपना।
कांइ आगम में अधिकार, और असंख्या तारया हो।
उधारया सेवक आपरा, प्रभू सरणा इसाधार ॥ श्री० ॥ ५ ॥
अशरण शरण कहीजे हो, प्रभू विरद विचारो साहिबा।
कांइ अहो ग़रीब निवाज, शरण तुम्हारी आयो हो।
हूँ चाकर जिन चरना तणो, म्हारी सुणिये अरज अवाज ॥ श्री ॥ ६ ।
तू करुणा कर ठाकुर हो, प्रभु धरम दिवा कर जग गुरू।
कांइ भव दुख दुष्कृत टाल, "विनयचंद" ने आपो हो।
प्रभु निजगुण संपतशास्वती, प्रभू दीनानाथदयाल ॥ श्री ॥ ७ ॥

२—श्री अजितनाथ-स्तवन

(कुविसन मारग माथे रे धिग ए देशी)

श्री जिन अजित, नमो जयकारी, तुम देवन को देवजी।
जय शत्रु राजा ने विजिया राणी को, आतम जात तुमेव जी।
श्री जिन अजित नमो जयकारी ॥ टेर ॥ १ ॥

दूजा देव अनेरा जगमें, ते मुझ दाय न आवेजी।
तह मन तह चित्त हमने, तुहीज अधिक सुहावे जी ॥ श्री ॥ २ ॥
सेव्या देव घणा भव भव में, तो पिण गर्ज न सारी जी।
अबकै श्री जिनराज मिल्यौ तूँ, पूरण पर उपकारी जी ॥ श्री ॥ ३ ॥

त्रिभुवन में जस उज्ज्वल तेरो, फैल रह्यो जग जाने जी ।
वंदनीक पूजनीक सकल को, आगम एम बखाने जी ।। श्री ।। ४ ।।
तू जग जीवन अंतरजामी, प्राण अधार पियारो जी ।
सबविधि लायक संत सहायक, भक्त वच्छल विरुद थारोजी।।श्री।।५।।
अष्ट सिद्धि नव निद्धि को दाता, तो सम और न कोई जी ।
वधै तेज सेवक को दिन दिन, जेथ-तेथ होई जी ।। श्री ।। ६ ।।
अनंत ग्यान दर्शन संपति ले, ईश भयो अविकारी जी ।
अविचलभक्ति 'विनयचंद' कूं देवो, तौ जाणू रिझवारी जी ।।श्री।। ७ ।।

३—श्रीसम्भवनाथ स्तवन

(आज म्हारा पारसजी ने चालो बंदन जइए ऐ देशी)

आज म्हारा संभव जिनके, हित चितसूँ गुण-गास्यां ।
मधुर मधुर स्वर राग अलापी, गहरे शब्द गुंजास्यां राज ।
आज म्हारा संभव जिनके, हित चितसूँ गुण गास्यां ।। आ० ।। १ ।।
नृप "जितारथ" "सेन्या" राणी, तासुत सेवकथास्यां ।
नवधा भक्ति भाव सौ करने, प्रेम मगन हुई जास्याँ राज ।।आ०।। २ ।।
मन वच काय लाय प्रभू सेती, निसदिन सास उसास्यां ।
संभव जिनकी मोहनी मूरति हिय निरन्तर ध्यास्यां राज ।।आ० ।। ३ ।।
दीन दयाल दीन वंधव कै, खाना जाद कहास्यां ।
तन-धन प्रान समरपी प्रभू को, इनपर वेग रिझास्यां राज ।।आ०।।४।।
अष्ट कर्म दल अति जोरावर, ते जीत्या सुख पास्यां ।
जालम मोहमार को जामें, साहस करी भगास्यां राज ।।आ०।। ।। ५ ।।

ऊबट पंथ तजी दुग्गति को, शुभगति पंथ समास्यां।
आगम अरथ तणे अनुसारे, अनुभव दसा अभ्यास्यां राज आ० ॥ ६ ॥
काम क्रोध मद लोभकपट तजि, निज गुणसूँ लवलास्यां।
विनयचंद संभव जिन तूठ्याँ, आवागवन मिटास्यां राज॥आ०॥७॥

४—अभिनन्दननाथ-स्तवन

(आदर जीव क्षिम्या गुण आदर ऐ देशी)

श्री अभिनंदन, दुःख निकन्दन, बन्दन पूजन योगजी।
आसा पूरो, चिन्ता चूरो आयो सुख, आरोगजी ॥ श्री० ॥ १ ॥
"संबर" राय "सिधारथ" राणी, तेहनो आतम जात जी।
प्रान पियारो साहिब सांचो, तुहो मातने तातजी ॥ श्री ॥ २ ॥
कैइयक सेब करें शंकर की, कैइयक भजें मुरार जी।
गणपति सूर्य उमा कैई सुमरें, हूँ सुमरूँ अविकारजी ॥श्री॥ ३ ॥
देव कृपा सूँ पामे लक्ष्मी, सो इण भव को सुक्ख जी।
थो तूठाँ इन भव पर भव मे, कदी न व्यापै दुःखजी ॥श्री॥ ४ ॥
जदपी इन्द्र नरिन्द्र निवाजें, तदपी करत निहालजी।
तूँ पुजनीक नरिन्द्र इन्द्रको, दीन दयाल कृपाल जी ॥ श्री ॥ ५ ॥
जब लग आवागमन न छूटै, तब लग ए अरदासजी।
सम्पति सहित ज्ञान समकित गुण, पाऊँ दृढ़ विसवासजी ॥श्री॥ ६ ॥
अधम उधारन विरुद तिहारो, जोवो इण संसारजी।
लाज 'विनयचन्द'की अब तोनें, भवनिधि पार उतारजी॥श्री॥ ७ ॥

५—श्री सुमतिनाथ-स्तवन

(श्रीसीतल जिन साहिबाजी ऐ देशी)

सुमति जिणेसर साहिबाजी, "मेघरथ" नृप नो नंद ।
"सुमंगला" माता तणो जी, तनय सदा सुखकंद ॥
प्रभू त्रिभुवन तिलोंजी ॥ १ ॥
सुमति सुमति दातार, महा महिमानिलोजी ।
प्रणमूँ बार हजार, प्रभू त्रिभुवन तिलोजी ॥ २ ॥
मधुकर नो मन मोहियोजी, मालती कुसुम सुवास ।
त्यूँ मुज मन मोह्यो सही, जिन महिमा सुविमास ॥प्रभु०॥ ३ ॥
ज्यूँ पङ्कज सूरज मुखीजी, बिकसै सूर्य प्रकाश ।
त्यूँ मुज मनड़ो गह गहै, सुनि जिन चरित हुलास॥प्रभू०॥ ४ ॥
पपइयो पीउ पीउ करेजी, जान वर्षाऋतु मेह ।
त्यूँ मो मन निसदिन रहै, जिन सुमरन सूँ नेह ॥प्रभू०॥ ५ ॥
काम भोगनी लालसाजी, थिरता न धरे मन्न ।
पिण तुम भजन प्रतापथी, दाझै दुरमति वन्न ॥प्रभु०॥ ६ ॥
भवनिधि पार उतारियेजी, भक्त बच्छल भगवान ।
'बिनयचन्दकी' वीनतो, थें मानो कृपानिधान ॥ प्रभु० ॥७॥

६—श्री पद्मप्रभु स्तवन

(स्याम कैसे गज का फन्द छुड़ायो ऐ देशी)

पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो, पतित उद्धारन हारो ॥टेर॥
जदपि धीमर भील कसाई, अति पापिष्ठ जमारो ।
तदपि जीव हिंसा तज प्रभू भज, पावै भवनिधि पारो ॥पद्म॥ १ ॥

गौ ब्राह्मण प्रमदा बालककी, मोठी हत्याच्यारो ।
तेहनो करणहार प्रभू-भजने, होत हत्यासूं न्यारो ॥पदम॥ २ ॥
वेश्या चुगल चंडाल जुवारी, चोर महा वट मारो ।
जो इत्यादि भजे प्रभु तोने, तो निवृतें संसारो ॥पदम॥ ३ ॥
पाप कराल को पुञ्ज वन्यौ, अति मानो मेरु अकारो ।
ते तुम नाम हुवाशन सेती, सहजा प्रजलत सारो ॥पदम॥ ४ ॥
परम धर्म को मरम महारस, सो तुम नाम उच्चारो ।
या सम मंत्र नहीं कोई दूजो, त्रिभुवन मोहन गारो ॥पदम॥ ५ ॥
तो सुमरण विन इण कलयुग में, अवर न को आधारो ।
मैं वारि जाऊँ तो सुमरन पर, दिन दिन प्रीत वधारो ॥पदम॥ ६ ॥
"सुषमा राणी" को अंगजात तूँ, "श्रीधर" राय कुमारो ।
'विनयचन्द' कहे नाथ निरञ्जन, जीवन प्राण हमारो ॥पदम०॥७॥

७—श्री सुपार्श्वनाथ-स्तवन

(प्रभुजी दीनदयाल सेवक सरणे आयो एदेशी)

"प्रतिष्ट सैन" नरेश्वर को सुत, "पृथवी" तुम महतारी ।
सुगुण सनेही साहिब सांचो, सेवक ने सुखकारी ॥
श्री जिनराज सुपास, पूरो आस हमारी ॥टेर॥ १ ॥
धर्म काम धन मोक्ष इत्यादिक, मन वांछित सुख पूरो ।
वार वार मुझ विनती येही, भवभव चिंता चूरो ॥श्रीजिन०॥ २ ॥
जगत् शिरोमणि भक्ति तिहारी, कल्पवृक्ष सम जाणू ।
पूरणब्रह्म प्रभू परमेश्वर, भवभव तुम्हे पिछाणू ॥श्रीजिन०॥ ३ ॥

हूँ सेवक तूँ साहिब मेरो, पावन पुरुष विज्ञानी ।
जनम-जनम जित-तित जाऊँ तो, पालो प्रीति पुरानी ॥श्रीजिन०॥४॥
तारण-तरण अरु असरण-सरण को, बिरुद इसो तुम सोहे ।
तो सम दीनदयाल जगत में, इन्द्र नरिन्द्रन को है॥श्रीजिन०॥ ५॥
शम्भु रमण बड़ो समुद्रो में, शैल सुमेर बिराजै ।
तू ठाकुर त्रिभुवनमें मोटो, भक्ति किया दुख भाजै ॥श्रीजिन०॥ ६॥
अगम अगोचर तू अविनाशी, अलप अखंड अरूपी ।
चाहत दरस 'विनयचंद' तेरो, सच्चिदानन्द स्वरूपी ॥श्रीजिन०॥ ७॥

८—श्री चन्द्रप्रभ-स्तवन

(चौकनी देशी)

जय जय जगत शिरोमणी, हूँ सेवक ने तूँ धणी ।
भव तोसूँ गाढ़ी बणी, प्रभू आशा पूरो हमतणी ॥ टेर ॥
मुझे म्हेर करो, चन्द प्रभू जग जीवन अन्तरजामी ।
भव दुःख हरो, सुणिये अरज हमारी त्रिभुवन स्वामी ।.जय०॥ १॥
"चन्दपुरी" नगरी हती, "महासेन" नामा नरपति ।
राणी "श्रीलखमा" सती, तसु नन्दन तूँ चढ़ती रती॥जय०॥२॥
तूँ सरवज्ञ महाज्ञाता, आतम अनुभव को दाता ।
तो तूठां लहिये साता, प्रभु धन्य २ जगमें तुम ध्याता ॥जय०॥ ३॥
शिव सुख प्रार्थना करसूँ, उज्ज्वल ध्यान हिये धरसूँ ।
रसना तुम महिमा करसूँ, प्रभू इण विध भवसागरसे तिरसूँ ॥जय०॥४॥
चंद चकोरन के मन मे, गाज अवाज होवे घन में ।
पिय अभिलाषा ज्यो त्रियतनमें, ज्यो वसियो तू मो चित वनमें ५

जो सूनजर साहिब तेरी, तो मानो विनती मेरी ।
काटो करम भरम वेरी, प्रभु पुनरपि नहिं परूँ भव फेरी ॥जय०॥
आतम-ज्ञान दशा जागी, प्रभु तुम सेती लवलागी ।
अन्य देव भ्रमना भागी, 'विनयचंद' तिहारो अनुरागी ॥जय०॥

९—श्री पुष्पदन्त-स्तवन

(बुढ़ापो वेरी आविया हो ए देशी)

"काकंदी" नगरी भली हो, "श्री सुग्रीव" नृपाल ।
"रामा" तसु पट रागनी हो, तस सुत परम कृपाल ॥
श्री सुविध जिणेसर वंदिये हो ॥ टेर ॥ १

त्यागी प्रभुता राजनी हो, लीवो संजम भार ।
निज आतम अनुभव था हो, पाम्या प्रभु पद अविकार ॥श्री०॥ २
अष्ट कर्म नोराजवो हो, मोह प्रथम क्षय कीन ।
सुध समकित चारित्रनो हो, परम क्षायक गुणलीन ॥श्री०॥ ३
ज्ञानावरणी दर्शणावरणी हो, अन्तराय कीयो अन्त ।
ज्ञान दरशन वल ये त्रिहूँ हो, प्रगट्या अनन्ता नन्त ॥श्री० ॥ ४
अव्यावाध सुख पामिया हो, वेदनी करम खपाय ।
अव गाहण अटल लही हो, आयु क्षै करन जिनराय ॥श्री०॥ ५
नाम करम नौ क्षय करी हो, अमूर्तिक कहाय ।
अगुरु लघुपणो अनुभव्यौ हो, गौत्र करम मुकाय ॥श्री०॥ ६
आठ गुणा कर ओलख्यो हो, जोती रूप भगवंत ।
"विनयचंद" के उरवसो हो, अहोनिश प्रभु पुष्पदंत ॥श्री० ॥७॥

१०—श्री शीतलनाथ-स्तवन

(जिंदवारी देशी)

"श्रीदृढ़रथ" नृप पिता, "नंदा" थारी माय ।
रोम-रोम प्रभू मो भणी, सीतल नाम सुहाय ॥
जय जय जिन त्रिभुवन धणी ॥ टेर ॥ १ ॥
करुणानिध करतार, सेव्यां सुरतरु जेहवो ।
वाँछित सुख दातार ॥ जय ॥ २ ॥
प्राण पियारो तू प्रभू, पति भरता पति जेम ।
लगन निरंतर लगरही, दिनदिन अधिको प्रेम ॥जय०॥ ३ ॥
शीतल चंदन नी परें, जपता निसदिन जाप ।
विषै कषाय न ऊपने, मेटौ भव-दुख ताप ॥जय०॥ ४ ॥
आरत रुद्र परिणाम थी, उपजै चिन्ता अनेक ।
ते दुख कापो मानसी, आपौ अचल विवेक ॥जय०॥ ५ ॥
रोगादिक क्षुधा तृषा, शस्त्र अशस्त्र प्रहार ।
सकल शरीरी दुःख हरौ, दिलसुँ बिरुद विचार॥जय०॥ ६ ॥
सुप्रसन्न होय शीतल प्रभू, तू आसा विसराम ।
"विनयचंद" कहै मो भणी, दीजै मुक्ति मुकाम॥ जय० ॥७॥

११—श्री श्रेयाँसनाथ-स्तवन

(राग काफी देसी होरी की)

श्री अंस जिनन्द सुमररे ॥ टेर ॥
चेतन जाण कल्याण करन को, आन मिल्यो अवसररे ।
शास्त्र प्रमान पिछान प्रभ गुन, मन चंचल थिर कररे ॥श्री०॥ १ ॥

सास उसास विलास भजन को, दृढ विस्वास पकररे ।
अजपाभ्यास प्रकाश हिये विच, सो सुमरन जिनवररे ॥श्री०
कंद्रप क्रोध लोभ मद मच्छर, यह सबही पर हररे ।
सम्यक्‌दृष्टि सहज सुख प्रगटै, ज्ञान दशा अनुसररे ॥श्री०॥
झूँठ प्रपंच जोवन तन धन अरु, सजन सनेही घररे ।
छिनमें छोड़ चले पर भव कूँ, वंध सुभासुभ थिररे ॥श्री०॥
मानस जनम पदारथ जिनकी, आसा करत अमररे ।
ते पूरव सुकृत कर पायो, धरम-मरम दिल धररे ॥ श्री० ॥
"बिशनसैन" नृप "बिस्नाराणी" को, नंदन तू न विसररे ।
सहज मिटै अज्ञान अविद्या, मुक्त पंथ पग भररे ॥ श्री० ॥
तू अविकार विचार आतम गुन, भव-जंजाल न पररे ।
पुद्‌गल चाय मिटाय विनयचन्द, तू जिनते न अवररे ॥ श्री० ॥

१२—श्रीवासुपूज्य-स्तवन

(फूथली देह पलक में पलटे ए देशी)

प्रणमूँ बास पूज्य जिन नायक, सदा सहायक तू मेरो ।
विषम वाट घाट भयथानक, परमाश्रय सरनो तेरो ॥ प्रणमू०॥ १
खलदल प्रबल दुष्ट अति दारुण, जो चौ तरफ दिये घेरो ।
तौ पिण कृपा तुम्हारी प्रभुजी, अरियन होय प्रगटै चेरो ॥ प्र० ॥ २
विकट पहार उजार विचाले, चोर कुपात्र करे हेरो ।
तिण विरियां करिये तो सुमरण, कोई न छीन सके डेरो ॥ प्र० ॥ ३
राजा बादशाह जो कोई कोपे, अति तकरार करे छेरो ।
तू अनुकूल होय तो, छिन में छुट जाय केरो ॥ प्रण० ॥ ४ ॥

राक्षस भूत पिशाच डांकिनी, साँकनी भय न आवे नेरौ ।
दुष्ट मुष्ट छल छिद्र न लागे, प्रभ तुम नाम भज्यां गहरो ॥प्र०॥ ५ ॥
विस्फोटक कुष्टादिक सङ्कट, रोग असाध्य मिटे देहरो ।
विष प्यालो अमृत होय प्रगमें, जो विश्वास जिनंद केरो ॥प्र०॥ ६ ॥
मात 'जया' 'वसु' नृप के नन्दन, तत्व जथारथ बुध प्रेरौ ।
दे,कर जोरि विनयचंद विनवे, बेग मिटे मुझ भव फेरो ॥ प्रण०॥७॥

१३–श्रीविमलनाथ-स्तवन

(अहो शिवपुर नगर सुहावणो ए देशी)

विमल जिनेश्वर सेविये, थारी बुध निर्मल हो जायरे जीवा ।
विषय-विकार बिसार ने, तूँ मोहनो करम खपाय रे ।
जीवा विमल जिनेश्वर सेविये ॥ १ ॥
सूक्षम साधारण पणे, परतेक बनस्पती मांयरे जीवा ।
छेदन भेदन तेसही, मर-मर ऊपज्यो तिण कायरे ॥जी०॥ २ ॥
काल अनंत तिहांगम्यो तेहना दुख आगम थी सँभाल रे ।
पृथ्वी अप्प तेउ वायु में, रह्यो असंख्या तो कालरे ॥जी०॥ ३ ॥
एकेन्द्री सूँ बेंद्री थयो, पुन्याई अनंतो वृधरे जीवा ।
असनीपचेंद्री लगें पुनवध्या, अनंतानंत प्रसिद्ध रे ॥जीवा॥ वि०॥ ४ ॥
देव नरक तिर्यंच में, अथवा मानव भवनीचरे जीवा ।
दीन पणे दुख भोगव्या, इण पर, चारो गति वीचरे ॥जी०॥ ५ ॥
अबके उत्तम कुल मिल गो, भेटया उत्तम गुरू साधुरे जीवा ।
सुण जिन वचन सनेह से, समकित व्रत शुद्ध आराधरे ॥जी०॥ ६ ॥
पृथ्वीपति 'कृतिभानु' को, 'सामाराणी' को कुमाररे जीवा ।
"विनयचद" कहै ते प्रभू, सिर सेहरो हिवडारो हाररे ॥जी०॥७॥

१४—श्रीअनन्तनाथ-स्तवन

(वेगा पधारोरे म्हेल थी एदेशी)

अनंत जिनेश्वर नित नमो, अद्भुत जोत अलेख ।
ना कहिये ना देखिये, जाके रूप न रेख ॥अनंत॥ १ ॥
सुक्षम थी सूत्तम प्रभू, चिदानंद चिदरूप ।
पवन शब्द आकाशथी, सुत्तम ज्ञान सरूप ॥अनंत॥ २ ॥
सकल पदारथ चिन्तवूं, जेजे सुत्तम जोय ।
तिणथी तू सूक्षम महा, तो सम अवरन कोय ॥अनंत॥ ३ ॥
कवि पंडित कह-कह थके, आगम अर्थ विचार ।
तौ पिण तुम अनुभव तिको, न सके रसना उचार ॥अनत॥ ४ ॥
पभणे श्रीमुख सरस्वती, देवी आपो आप ।
काह न सके प्रभू तुम सत्ता, अलख अजपा जाप ॥अनंत॥ ५ ॥
मन बुध वाणी तो विषे, पहुंचे नहीं लगार ।
साची लोकालोकनो, निरविकल्प निराकार ॥अनंत॥ ६ ॥
मातु 'सुजसा' 'सिंहरथ' पिता, तासु सुत 'अनंत' जिनंद ।
"विनयचंद" अब ओलख्यो, साहिब सहजानन्द ॥अनंत॥ ७ ॥

१५—श्री धर्मनाथ-स्तवन

(आज नहेजोरे दीसै नाहलो एदेशी)

धरम जिनेश्वर मुज हिवडै वसो, प्यारो प्राण समान ।
कबहूँ न विसरूं हो चितारूं सही, सदा अखंडित ध्यान ॥ध०॥ १ ॥
ज्यूं पनिहारी कुम्भ न वीसरे, नट वो वरित निदान ।
पलक न विसरे हो पदमनिपियु भणी, चकवी न विसरे भान ॥ध०॥

ज्यूं लोभी मन धनकी लालसा, भोगी के मन भोग।
रोगी के मन माने औषधी, जोगी के मन जोग ॥ध०॥ ३ ॥

इण पर लागी हो पूरण प्रीतडो, जाव जीव परियंत।
भव-भव चाहूँ हो न पड़े आंतरो, भय भंजन भगवंत ॥ध०॥ ४ ॥
काम क्रोध मद मच्छर लोभ थी, कपटी कुटिल कठोर।
इत्यादिक अवगुण कर हूँ भर्यो, उदय कर्मके जोर ॥ध०॥ ५ ॥
तेज प्रताप तुमारो प्रगटै, मुज हिवड़ा में आय।
तो हूँ आतम निज गुण संभालने अनंत बली कहियाय ॥ध०॥ ६ ॥
'भानू' नृप 'सुव्रत्ता' जननी तणो, अङ्ग जाति अभिराम।
विनयचंद ने वल्लभ तू प्रभू, सुध चेतन गुण धाम ॥ध०॥ ७ ॥

१६—श्री शांतिनाथ-स्तवन

(प्रभूजी पधारो हो नगरी हमतणी एदेशी)

"विश्व सैन" नृप "अचला" पटरानी ॥
तासु सुत कुल सिणगार-हो सोभागी।
जनमतां शान्ति करी निज देसमें ॥
मरी मार निवार हो सोभागी।
शान्ति जिनेश्वर साहिब सोलमां ॥ १ ॥
शान्ति दायक तुम नाम हो सोभागी।
तन मन वचन सुध कर ध्यावतां ॥
पूरे सघली आस हो सोभागी ॥ २ ॥
विघन न व्यापे तुम सुमरन कियां।
नासै दारिद्र दुःख हो, सौभागी ॥

अष्ट सिद्धि नव निद्धि पग पग मिलै ।
प्रगटै सगला सुक्ख हो, सौभागी ॥ ३ ॥
जेहने सहायक शान्ति जिनंद तूं ।
तेहनै कमीय न काय हो सोभागी ॥
जे जे कारज मन में तेवढ़ै ।
ते-ते सफला थाय हो, सोभागी ॥ ४ ॥
दूर दिसावर देश प्रदेश मे ।
भटके भोला लोक हो, सोभागी ॥
सानिधकारी सुमरन आपरो ।
सहज मिटे सहू सोक हो ॥ सोभागी ॥ ५ ॥
आगम - साख सुणी छै एहवी ।
जो जिण-सेवक होय हो ॥ सोभागी ॥
तेहनी आसा पूरै देवता ।
चौसठ इन्द्रादिक सोय हो । सोभागी ॥ ६ ॥
भव-भव अन्तरयामी तुम प्रभू ।
हमने छै आधार हो ॥ सोभागी ॥
येकर जोड़ "विनयचंद" विनवै ।
आपो सुख श्री कार हो ॥ सोभागी ॥ ७ ॥

१७—श्री कुन्थूनाथ-स्तवन

(रेखता)

कुंथ जिनराज तू ऐसो, नहीं कोई देव तू जैसो ।
[illegible] नाथ तूं कहिये, हमारी बांह दृढ़ गहिये ॥ कुंथ ॥ १ ॥

भवोदधि डूबतो तारो, कृपानिधि आसरो थारो।
भरोसा आपका भारी विचारो विरुद उपकारी ॥ कुंथ० ॥ २ ॥

उमाहो मिलन को तोसे, न राखो आंतरो मोसे।
जैसी सिद्ध अवस्था तेरी, तैसी चेतन्यता मेरी ॥ कुंथ० ॥ ३ ॥

करम भ्रम जाल को दपट्यो, विषय सुख ममत में लपट्यो।
भ्रम्यो हूँ चहूँ गति मांहीं, उदैकर्म भ्रम की छाँही ॥कुंथ० ॥ ४ ॥

उदय को जोर है जोलूं न छूटै विषय सुख तोलूं।
कृपागुरुदेव की पाई, निजातम भावना भाई ॥ कुंथ० ॥ ५ ॥

अजब अनुभूति उरजागी, सुरति निज स्वरूप में लागी।
तुम्हि हम एकता जाणू—, द्वैत भ्रम-कल्पना मानूं ॥ कुंथ ॥ ६ ॥

"श्री देवी" "सुर" नृप नन्दा, अहो सरवज्ञ सुख कन्दा।
"विनयचन्द" लीन तुम गुन में, न व्यापै अविद्या मन में ॥कुंथ॥७॥

१८—श्री अरहनाथ-स्तवन

(अलगी गिरानी एदेशी)

अरहनाथ अविनासी शिव सुख लीधो,
विमल विज्ञान विलीसी। साहिब सीधो० ॥ १ ॥

तू चेतन भज अरह नाथने ते प्रभु त्रिभुवन राय।
तात 'सुदर्शन' 'देवी' माता, तेहनों पुत्र कहाय साहिब सीधो ॥२॥

कोड़ जतन करता नहीं पामें, एहवी मोटी माम।
ते जिन भक्ति करी ने लहिये, मुक्तिअमोलक ठाम ॥ सा० ॥ ३ ॥

समकित सहित कियां जिन भगती, ज्ञानदरसन चारित्र।
तप बीरज उपयोग तिहारा प्रगटे परम पवित्र ॥ सा० ॥ ४ ॥
सो उपयोग सरूप चिदानंद जिनवर ने तू एक।
द्वत अविद्या विभ्रम मेटौ वाधै शुद्ध विवेक ॥ सा० ॥ ५ ॥
अलख अरूप अखण्डित अविचल, अगम अगोचर आप।
निरविकल्प निकलंक निरंजन, अद्भुत जोति अमाप ॥ सा० ॥ ६ ॥
ओलख अनुभव अमृत वाको, प्रेम सहित रस पीजै।
हूँ-तूँ छोड़ "बिनयचन्द" अंतस, आतम-राम रमीजे ॥ सा० ॥७॥

१९—श्री मल्लिनाथ-स्तवन

(लावणी)

मल्लि जिन बाल ब्रह्मचारी।
"कुम्भ" पिता "परभावती" मइया तिनकी कुँवारी ॥टेर॥
मानी कूंख कंदरा मांही उपना अवतारी।
मालती कुसुम-मालनी वांछा जननी उरधारी ॥ म० ॥ १ ॥
तिणथी नाम मल्लि जिन थाप्यो, त्रिभुवन प्रिय कारी।
अद्भुत चरित तुम्हारो प्रभुजी वेद धर्‍यो नारी ॥ म० ॥ २ ॥
परणन काज जान सज आए, भूपति छै: भारी।
मिथिला पुरि घेरि चौतरफा, सेना विस्तारी ॥ म० ॥ ३ ॥
राजा "कुम्भ" प्रकाशी तुमपे, वीती विधि सारी।
छहुं नृप जान सजी तो परणन, आया अहंकारी ॥ म० ॥ ४ ॥
श्रीमुख धीरप दीधि पिताने, राखो हुशियारी।
ो एक रची निज आकृति, थोथी ढकणारी ॥ म० ॥ ५ ॥

२२—श्री नेमिनाथ-स्तवन

(नगरी खूब बणी छै जी एदेशी)

"समुद्र" विजय सुत श्री नेमीश्वर, जादव कुल को टीको ।
रतन कुक्ष धरणी "सिवा देवी", जेहनो नंदन नीको ॥
श्रीजिनमोहन गारो छै, जीवन प्राण हमारो छै ॥ टेर॥श्री०॥ १ ॥
सुन पुकार पशु की करुणा कर, जानिजगत् सुख फीको ।
नव भव नेह तज्यो जोबन मे, उग्रसैन नृप धीको ॥श्री०॥ २ ॥
सहस्र पुरुष सों संजम लीधो, प्रभुजी पर उपकारी ।
धन धन नेम राजुलकी जोड़ी, महा बाल ब्रह्मचारी ॥श्री०॥ ३ ॥
वोधानंद सरुपानंद में, चित एकाग्र लगायो ।
आतम-अनुभव दशा अभ्यासी,शुक्ल ध्यान जिन ध्यायो ॥श्री०॥ ४ ॥
पूर्णानंद केवली प्रगटे, परमानंद पद पायो ।
अष्टकर्म छेदी अलवेसर, सहजानंद समायो ॥श्री०॥ ५ ॥
नित्यानंद निराश्रय निश्चय, निर्विकार निर्वाणी ।
निरांतक निरलेप निरामय, निराकार वरनाणी ॥श्री०॥ ६ ॥
एवहो ध्यान समाधि संयुक्त, श्री नेमीश्वर स्वामी ।
पूरण कृपा "विनैचंद" प्रभू की, अवते ओलखपामी ॥श्री०॥७॥

२३—श्री पार्श्वनाथ-स्तवन

(जीवरे शीलतणो कर सग)

"अस्वसैन" नृप कुल तिलोरे, "वामा" देवी नौ नंद ।
चिंतामणि चित्त में वसेरे दूर टले दु:ख द्वंद ॥
जीवरे तू पार्श्व जिनेश्वर वन्द ॥ टेर ॥ १ ॥

समकित सहित कियां जिन भगती, ज्ञानदरसन चारित्र।
तप वीरज उपयोग तिहारा प्रगटे परम पवित्र ॥ सा० ॥ ४ ॥
सो उपयोग सरूप चिदानंद, जिनवर ने तू एक।
द्वत अविद्या विभ्रम मेटौ वाधे शुद्ध विवेक ॥ सा० ॥ ५ ॥
अलख अरूप अखण्डित अविचल, अगम अगोचर आप।
निरविकल्प निकलंक निरंजन, अद्भुत जोति अमाप ॥ सा० ॥ ६ ॥
ओलख अनुभव अमृत वाको, प्रेम सहित रस पीजै।
हूँ-तूँ छोड़ "विनयचन्द" अंतस, आतम-राम रमीजे ॥ सा० ॥७॥

१६—श्री मल्लिनाथ-स्तवन

(लावणी)

मल्लि जिन बाल ब्रह्मचारी।
"कुम्भ" पिता "परभावती" मइया तिनकी कुँवारी ॥टेर॥
मानी कूंख कंदरा मांही उपना अवतारी।
मालती कुसुम-मालनी वांछा जननी उरधारी ॥ म० ॥ १ ॥
तिणथी नाम मल्लि जिन थाप्यो, त्रिभुवन प्रिय कारी।
अद्भुत चरित तुम्हारो प्रभुजी वेद धर्यो नारी ॥ म० ॥ २ ॥
परणन काज जान सज आए, भूपति छैः भारी।
मिथिला पुरि घेरि चौतरफा, सेना विस्तारी ॥ म० ॥ ३ ॥
राजा "कुम्भ" प्रकाशी तुमपे, बीती बिधि सारी।
छहुं नृप जान सजी तो परणन, आया अहंकारी ॥ म० ॥ ४ ॥
श्रीमुख धीरप दीधि पिताने, राखो हुशियारी।
पुतली एक रची निज आकृति, थोथी ढकणारी ॥ म० ॥ ५ ॥

२२—श्री नेमिनाथ-स्तवन

(नगरी सुन वर्णी छै जी ण्देशी)

"समुद्र" विजय सुत श्री नेमीश्वर, जादव कुल को टीको।
रतन कुक्ष धरणी "सिवा देवी", जेहनो नदन नीको॥
श्रीजिनमोहन गारो छै, जीवन प्राण हमारो छै॥ टेर॥श्री०॥ १॥
सुन पुकार पशु की करुणा कर, जानिजगत् सुख फीको।
नव भव नेह तज्यो जोवन में, उग्रसैन नृप धीको॥श्री०॥ २॥
सहस्र पुरुष सों संजम लीधो, प्रभुजी पर उपकारी।
धन धन नेम राजुलकी जोड़ी, महा बाल ब्रह्मचारी॥श्री०॥ ३॥
बोधानंद सरुपानंद में, चित एकाग्र लगायो।
आतम-अनुभव दशा अभ्यासी, शुक्ल ध्यान जिन ध्यायो॥श्री०॥ ४॥
पूर्णानंद केवली प्रगटे, परमानंद पद पायो।
अष्टकर्म छेदी अलवेसर, सहजानंद समायो॥श्री०॥ ५॥
नित्यानंद निराश्रय निश्चय, निर्विकार निर्वाणी।
निरांतक निरलेप निरामय, निराकार वरनाणी॥श्री०॥ ६॥
एवहो ध्यान समाधि संयुक्त, श्री नेमीश्वर स्वामी।
पूरण कृपा "विनैचंद" प्रभू की, अबते ओलखपामी॥श्री०॥७॥

२३—श्री पार्श्वनाथ-स्तवन

(जीवरे शीलतणो कर संग)

"अस्वसैन" नृप कुल तिलोरे, "वामा" देवी नो नंद।
चिंतामणि चित्त में वसेरे दूर टले दुःख द्वंद॥
जीवरे तू पार्श्व जिनेश्वर वन्द॥ टेर॥ १॥

जड़ चेतन मिश्रित पणैरे, करम सुभाशुभ थाय ।
ते विभ्रम जग कलपनारे, आतम अनुभव न्याय ॥जीवरे०॥ २॥
वैहमी भय माने जथारे, सूने घर वैताल ।
त्यूं मूरख आतम विषैरे, मान्यो जग भ्रम जाल ॥जीवरे०॥ ३॥
सरप अंधारै रासडीरे, रूपो सीप समार ।
मृग तृषना अंबू मृषारे, त्यूं आतम संसार ॥जीवरे॥ ४॥
अग्नि विषै ज्यों मणी नहीं रे, मणी में अग्नि न होय ।
सुपने की संपति नहीं ज्युं, आगम मे जग जोय ॥जीवरे०॥ ५॥
वांज पुत्र जनमे नही रे, सींग शशै सिर नाहीं ।
कुसुम न लागै व्योम मेरे, ज्यूं जग आतम मांहि ॥जीवरे०॥ ६॥
अमर अजोनी आतमारे, हूं निश्चै तिहुं काल ।
"बिनैचंद" अनुभव जगीरे, तू निज रूप सम्हाल ॥जीवरे०॥ ७॥

२४—श्री महावीर-स्तबन

(श्रीनवकार जपो मन रंगे एदेशी)

धन धन जनक 'सिद्धारथ' राजा धन, 'त्रसलादे' मातरे प्राणी ।
ज्यां सुत जायो गोद खिलायो, 'बर्धमान' बिख्यातरे प्राणी ॥
श्री महावीर नमो वरनाणी, शासन जेहनो जाणरे प्राणी ॥ १॥
प्रवचन सार विचार हिया में, कीजै अरथ प्रमाणरे ॥प्रा०॥श्री०॥ २॥
सूत्र विनय आचार तपस्या, चार प्रकार समाधिरे प्राणी ।
ते करिये भव सागर तरिये, आतम भाव अराधिरे प्राणी ॥श्री०॥ ३॥
ज्यों कंचन तिहुं काल कहीजै, भूषण नाम अनेकरे प्रा० ।
त्यों जगजीव चराचर जोनी, है चेतन गुन एकरे प्राणी ॥श्री॥ ४॥

अपणो आप विपै थिर आतम सोहं हंस कहायरे प्रा० ।
केवल ब्रह्म पदारथ परिचय,पुद्गल भरम मिटायरे प्राणी ।।श्री०।। ५ ।।

शब्द रूप रस गंध न जामे, ना सपरस तप छाहरे प्रा० ।
तिमर उद्योत प्रभा कछु नाहीं,आतम अनुभव माहिरे प्रा०।।श्री।। ६ ।।

सुख दुःख जीवन मरन अवस्था,ऐ दस प्राण संगारते प्रा० ।
इनथी भिन्न विनैचंद रहिये, ज्यों जलमें जल जातरे प्रा०।।श्री।। ७ ।।

।। कलश ।।

चौबीस तीरथ नाथ कीरति, गावतांमन गह गहै ।
कुमट गोकुलचन्द नन्दन, 'विनयचन्द' इणपर कहै ।।
उपदेश पूज्य हमीर मुनिको, तत्व निज उरमें धरी ।
उगणीस सो छै' के छमच्छर, चतुर्विंशति स्तुवि इम करी ।।

भजन

जीवन गण देखो अपना रूप ।
यह संसार न मित्र तुम्हारा, भूलो मती स्वरूप ।।
जड़-वस्तू की रचना यह जग, तुम चैतन्य अनूप ।
नहीं तुम्हारी इसकी समता, ज्यो छाया अरु धूप ।।
जग की सव सम्पति ऐसी है, ज्यों गोवर के पूप ।
वार न लागत विगड़त सुधरत, चणहि रङ्क, चण भूप ।।
मानुष जन्म न खोओ अकारथ, पड़ि विषयन के कूप ।
धर्म सार रखि पाप कूट को, छिटकाओ ज्यों सूप ।।
मोह-जाल पड़ि स्वतन्त्रता को, मति राखो तुम गूप ।
तजि घर काटन को भवचक्कर, पकड़ो धर्म को यूप ।।

भजन

धर्म सा नही कोई बलवान, धर्म में होती शक्ति महान ।
कैसा भी हो कष्ट धैर्य से, करे धर्म का ध्यान ॥
कहां गये वे कष्ट नहीं है, यह भी पड़ता जान ॥ १ ॥
भव सागर के घोर दुःख से, जब घबराते प्राण ।
ऐसे समय में एक धर्म ही जीव को देता त्राण ॥ २ ॥
लेना देना पुत्र रोग दुःख, मान और अपमान ।
ये सब चितामिट जावे यदि, करो धर्म सम्मान ॥ ३ ॥
धर्म सामने उपाय दूजे हैं, सब धूर समान ।
ऐसा समझ धर्म को "दीन्दित" हृदय में दो स्थान ॥ ४ ॥

राग टोडी-द्रुत एक ताल चार ताल)

दीन को दयालु दानि दूसरो न कोऊ ।
जासों दीनता कहौं, हौ देखौं दीन सोऊ ॥ १ ॥
सुर नर मुनि असुर नाग, साहिब तो घनेरे ।
तौलौं, जौलौं रावरे न नेकु नयन फेरे ॥ २ ॥
त्रिभुवन तिहुं काल विदित वदति वेद चारी ।
आपि अंत मध्य राम ! साहिबी तिहारी ॥ ३ ॥
तोहि मांगि मॉगनो न मागनो कहायो ।
सुनि सुभाउ, सील सुजस जाचन जन आयो ॥ ४ ॥
पाहन, पसु विदय, विहँग अपने कर लीन्हे ।
महाराज दसरथ के ? रंक राम कीन्हे ॥ ५ ॥

तू गरीब को निवाज, हौं गरीब तेरो ।
बारक कहिये कृपालु ? तुलसीदास मेरो ॥ ६ ॥

भजन

सन्त को लोमत छोटा जान, सन्त ही से होते भगवान ।
महात्मों को दुःख सहपालें तनिक न आरत ध्यान ।
स्वश्रम से जो प्राप्त किया वह तुम्हें सुनाते ज्ञान ॥ १ ॥
पहले तुमको नहीं सुनाते, जब लें खुद पहचान ।
निज आतम से अनुभव करके देते ज्ञान का दान ॥ २ ॥
सन्त जनों की सेवा करके, दान मान सम्मान ।
'दीक्षित' क्षुद्र जीव भी करते, निज आतम कल्याण ॥ ३ ।

राग कोशिया–तीन ताल

निंदक वावा वीर हमारा, विन ही कोड़ी वहै विचारा ॥ धु० ॥
कोटि कर्म के कलमप काटै, काज सँवारे विनही सांटै ॥ १ ॥
आप डूबै और को तारे, ऐसा प्रीतम पार उतारे ॥ २ ॥
जुग जुग जीवौ निंदक मारा, रामदेव ? तुम केरानिहोरा ॥ ३ ॥
निंदक मेरा पर उपकारी, 'दादू' निंदा करे हमारी ॥ ४ ॥

राग गजल–पहाड़ी धुन

समझ देख मन मीत पियारे आसिक होकर सोना क्यारे ।
रूखा सूखा-गम का टुकड़ा फीका और सलोना क्यारे ॥
पाया हो तो दे ले प्यारे पाय पाय फिर खोना क्यारे ।
जिन आंखिन में नींद घनेरी तकिया और विछौना क्यारे ॥
कहै 'कबीर' सुनो भाई साधो सीस दिया तब रोना क्यारे ॥

राग भैरवी, पंजाबी ठेका—तीन ताल

सुनेरी मैंने निर्बल के बल राम ।

पिछली साख भरूं संतन की आडे सँवारे काम ॥
जब लग गज बल अपनो बरत्यो नेक सरो नहिं काम ।
निर्बल के बल राम पुकारयो आये आधे नाम ॥
द्रुपद सुता निर्बल भई तादिन गह लाये निज धाम ।
दुःशासन की भुजा थकित भई बसन रूप भये श्याम ॥
अप बल तप बल और बाहुबल चौथा है बल राम ।
'सूर' किशोर कृपा से सब बल हारे को हरिनाम ॥

राग देस—दादरा

तू दयालु, दीन हौं तू दानि, हौं, भिखारी ।
हों प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुञ्जहारी ॥ १ ।
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो ।
मो समान आरत नहि, आरत हर तोसो ॥ २ ।
ब्रह्म तू हौं जीव, तू ठाकुर हौं चेरो ।
तात, मात, गुरु, सखा तू, सब विधि हितू मेरो ॥ ३ ।
तोहिं मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै ।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरन सरन पावे ॥ ४ ।

मेरी भावना

जिसने राग द्वेष कामादिक जीते, सब जग जान लिया ।
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया ॥
बुद्ध वीर जिन हरिहर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो ।
भक्ति भाव में प्रेरित हो, यह चित्त उसी में लीन रहो ॥

विषयों की आशा नहीं जिनके, साम्य भाव धन रखते हैं ।
निज पर के हित साधन में जो, निशिदिन तत्पर रहते हैं ॥
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या बिना खेद जो करते हैं ।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुःख समूह को हरते हैं ॥
रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे ।
उन्हीं जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे ॥
नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करूँ ।
परधन वनिता पर न लुभाऊँ, संतोषामृत पिया करूँ ॥
अहंकार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूँ ।
देख दूसरों की बढ़ती को कभी न ईर्ष्या भाव धरूँ ॥
रहे भावना ऐसी, सरल सत्य व्यवहार करूँ ।
बने जहाँ तक इस जीवन में औरों का उपकार करूँ ॥
मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे ।
दीन दुःखी जीवों पर मेरे उर से करुणा श्रोत बहे ॥
दुर्जन-क्रूर-कुमार्ग-रतों पर क्षोभ न मेरे को आवे ।
साम्य भाव रखूं मैं उन पर ऐसी परिणति हो जावे ॥
गुणी जनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे ।
बने जहाँ तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे ॥
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं द्रोह न मेरे उर आवे ।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ॥
कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे ।
लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे ॥
अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवे ।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा कभी न पद डिगने पावे ॥

होकर सुख में मग्न न फूलें दुःख मे कभी न घवरावे।
पर्वत नहीं स्मशान भयानक अटवी से नहीं भय खावे॥
रहे अडोल अकम्प निरंतर, यह मन दृढ़तर वन जावे।
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में सहन शीलता दिख लावे॥
सुखी रहे सब जीव जगत के कोई कभी न घवराये॥
वैर पाप अभिमान छोड़ जग नित्य नये मगल गावे।
घर घर चर्चा रहे धर्म की दुष्कृत दुष्कर हो जावे॥
ज्ञान चरित उन्नत कर अपना मनुज जन्म फल सब पावें।
ईति भीति व्यापे नहीं जग में वृष्टि समय पर हुआ करे॥
धर्म निष्ट होकर राज भी न्याय प्रजा का किया करे।
रोग मरी दुर्भिक्षन फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे॥
परम अहिंसा धर्म जगत में फैल सर्व हित किया करे।
फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर पर रहा करे।
अप्रिय, कटुक, कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे॥
वनकर सब "युग-वीर" हृदय से देशोन्नति रत रहा करे।
वस्तू स्वरूप विचार खुशी से सब दुःख संकट सहा करे॥

राग विहाग-तीन ताल

नाम जपन क्यो छोड़ दिया ?
क्रोधन न छोड़ा, झूठ न छोड़ा, सत्य वचन क्यो छोड़ दिया॥धु०
झूठे जाल में दिल ललचा कर, असल वतन क्यो छोड़ दिया ?
कोड़ी को तो खूब सम्हाला लाल रतन क्यों छोड़ दिया ? ॥ १
जहि सुमिरन ते अति सुख पावे, सो सुमिरन क्यो छोड़ दिया ?
'खालस' इक भगवान् भरोसे, तन, मन, धन, क्यो न छोड़ दिया ॥२

राग मल्हार-तीन ताल

साधो मन का मान त्यागो ।
काम क्रोध संगत दुर्जन की, ताते अहनिस भागो ॥ध्रु०॥
सुख दु ख दोनों समकरि जाने, और मान अपमाना ।
हर्ष शोक ते रहै अतीवा, तिन जग तत्व पिछाना ॥ १ ॥
अस्तुति निंदा दोऊ त्यागी, खोजै पद निरवाना ।
जन नानक यह खेल कठिन है, कोऊ गुरु मुख जाना ॥ २ ॥

राग खमाज धुमाली

भजेरे भइया राम जिनंद हरी ॥ध्रुव०॥
जप तप साधन कछु नहिं लागत, खरचत नहिं गठरी ॥ १ ॥
संतत संपत सुख के कारण, जासे भूल परी ॥ २ ॥
कहत कबीरा जा मुख राम नहिं, वो मुख धूल भरी ॥ ३ ॥

राग पीलू-दीपचन्दी

इस तन धन की कौन बड़ाई, देखते नैनों में मिट्टी मिलाई ॥ध्रु०॥
अपने खातीर महल बनाया, आपहि जाकर जंगल सोया ॥ १ ॥
हाड़ जले जैसे लकड़ी की मोली, बाल जले जैसे घास की पोली ॥ २ ॥
कहत कबीरा सुन मेरे गुनिया, आप मुवे पिछे डुब गई दुनिया ॥ ३ ॥

राग धनाश्री—तीन ताल

अब हम अमर भये, न मरेंगे,
या कारण मिथ्या तजियो तज क्योंकर देह धरेंगे ? अब॥१॥
राग दोष जग बन्ध करत है, इनको नाश करेंगे,
मर्यो अनंत काल ते प्राणी, सो हम काल हरेंगे ॥अब०॥२॥

देह विनाशी हूँ अविनाशी, अपनी गति पकरेंगे।
नासी नासी हम थिरवासी, चोखे व्है निसरेंगे ॥अब०
मन्यो अनंत बार विन समज्यो, अब सुख दुःख विसरें
आनन्दघन निपट निकट अक्षर दो, नहीं सुमरे सो सुमरेंगे

राग केदार—तीन ताल

राम कहो रहमान कहो कोउ, कान कहो महादेवरी।
पारसनाथ कहो कोउ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेवरी ॥राम०

भाजन भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूपरी।
तैसे खण्ड कल्पना रोपित, आप अखंड सरूपरी ॥ राम०

निज पद रमे राम सो कहिये, रहिम करे रहिमानरी।
कर्षे करम कान सो कहिये, महादेव निर्वाणरी ॥ राम०

परसे रूप पारस सो कहिये, ब्रह्म चिन्है सो ब्रह्मरी।
इह विधि साधो आप आनन्द धन चेतनमय निकर्मरी ॥राम०

राग तिलक कामोद—तीन ताल

पायोजी मैंने राम-रतन धन पायो ॥ टेक ॥

वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, किरपा कर अपनायो ॥
जनम जनम की पूँजी पाई, जग में सभी खोवायो ॥
खरचै न खूटै, वाको चोर न लूटे, दिन दिन बढ़त सवायो ॥
सत की नाव, खेवटिया सतगुरु, भवसागर तर आयो ॥
"मीरा" के प्रभु, गिरधर नागर, हरख हरख जस गायो ॥

राग खमाज—धुमाली

ष्णव (श्रावक) जन तो तेने कहिये जे पीड़ पराई जाणे रे,
परदुःखे उपकार करे तो ये, मन अभिमान न आणे रे ॥ध्रु०॥
सकल लोकमा सहुने वंदे, निन्दा न करे केनी रे,
वाच काछ मन निश्चल राखे, धन धन जजनी ते नीरे ॥ १ ॥
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, परस्त्री जेने मावरे,
जिव्हा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे ॥ २ ॥
मोह माया व्यापे नहि जेने, दृढ़ वैराग्य जैना मनमाँ रे,
राम नाम शुँ ताली लागी, सकल तीरथ तेना तन माँ रे ॥ ३ ॥
वण लोभी ने कपट रहित छे, काम क्रोध निवार्या रे,
भणे 'नरसैंयो' तेनुँ दरसण करता, कुल एको तेरे वार्यारे ॥ ४ ॥

राग छाया खमाज तीन ताल

सद्गुरु शरण विना अज्ञानतिमिर टल से नहिं रे।
जन्म मरण देनारु वीज खरुं बल से नहिं रे ॥ध्रु०॥
प्रेमामृत वच पान विना, सांचा खांटा ना भान विना।
गांठ हृदयनी, ज्ञान विना गल से नहि रे॥ १ ॥
शास्त्र ज्ञान सदा संभारे, तन मन इंद्रिय तत्पर वारे।
वगर विचारे रे वलमां सुख रल से नहि रे॥ २॥
तत्व नथी तारा मरामां, सुज्ञ समज नरता सारामां।
सेवक सुत दारामां, दिन बल से नहि रे ॥ ३ ॥
"केशव" प्रभुनी करतां सेवा परमानंद बतावे तेवा।
शोध विना सज्जन एवा मलशे नहि रे॥ ४ ॥

अभिलाषा

नहीं चाहिये मुझे राज्य पद, अथवा भौतिक विभव विलास।
कष्टो पार्जित प्रजाग्रास, हरने से उत्तम है उपवास॥
होकर धन मद मत्त करूंगा, मैं लोगों पर अत्याचार।
सुन न सकूंगा प्रजावृन्द की, हृदय विदारक हाहाकार॥
राज मार्ग से दूर किसी, एकन्त शान्त खेरे के पास।
पावन पर्ण कुटि में चाहता, मैं अपना स्वच्छन्द निवास॥
काव्य और अध्यात्म विषय के, चुने ग्रन्थ दो चार अनूप।
हों यदि मेरे निकट वनूं तो, मैं तो फिर भूपों का भूप॥
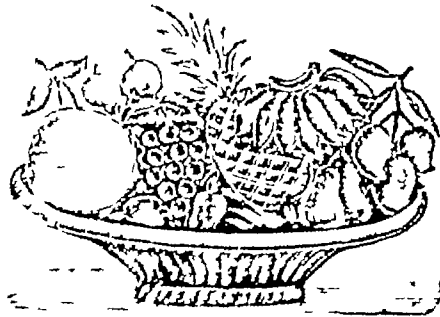
जैन धर्म में

दयादान सम्बन्धी क्रान्ति फैलाने वाले ग्रंथ

पूज्यश्री १०८ श्री जवाहिरलालजी साहेब के द्वारा विरचित

सद्धर्म मण्डन—(पृष्ट १२०० के लगभग) जिसका मूल्य केवल १) रुपया और "चित्रमय अनुकम्पा विचार" (जिसमे १८–२० चित्र दयादान के सम्बन्ध मे लगे रहेंगे) का मूल्य ॥) आना। उक्त ग्रन्थों में तेरहपंथ के "भ्रम विध्वंसन" और "अनुकम्पा की ढालो" का शास्त्र के मूल पाठ, टीका, भाष्य और तर्क वितर्कों के सहित अकाट्य युक्तियों द्वारा उत्तर दिया गया है। उक्त पुस्तको के प्रकाशन होने पर भी इसके लाभ मे वंचित न रहे, इसलिये पाठको को चाहिये कि अपना और अपने मित्रो का नाम' ग्राहको में लिखा दे जिससे पुस्तक छपते ही आप के कर कमलों में आ जावे। माला का उद्देश्य धन कमाना नहीं बल्कि प्रचार करने का है।

जीवन कार्यालय अजमेर की मुख्य पुस्तकें:—

अनुकम्पा विचार	॥)	जैन-धर्म में मातृ-पितृ सेवा	-)
परदेशी राजा	।)	परिचय (सद्धर्म मण्डन)	≡)
आदर्श क्षमा	-)॥	शालिभद्र चरित ३ भाग	।≡)
अर्जुनमाली (राधेश्यामतर्ज में)	=)	मिल के वस्त्र और जैन-धर्म	-)
नदन मणिहार	)॥	जिनरिख जिनपाल	)॥।

छपनेवाली पुस्तकें—मेघकुमार, मेघरथ राजा, चूलणीपिता, लैश्या विचार, लब्धी विचार, पाप से बचो।

निम्न लिखित पुस्तकों पर कमीशन नहीं मिलेगा—

अस्तेयव्रत	=)	सद्धर्म-मण्डन	२॥)	सकडाल पुत्र कथा	।)
सत्यव्रत	≡)	सुबाहु कुमार	।)	तीर्थङ्कर-चरित्रप्र भा	।)
ब्रह्मचर्यव्रत	=)	धर्मव्याख्या	=)	„ द्वि भा	।=)
अहिंसाव्रत	।)	वैधव्य दीक्षा	-)	सत्यमूर्ति हरिश्चन्द्र	॥)

परिचय

उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है ।
जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है वो खोवत है ॥
टुक नींद से अँखियाँ खोल ज़रा, ओ ! ग़ाफिल रब से ध्यान लगा ।
ये प्रीत करन की रीत नहीं, सब जागत है तु सोवत है ॥
नादान भुगत करनी अपनी, ओ पापी ! पाप में चैन कहाँ ।
जब पाप की गठरी शीश धरी, फिर शीश पकड़ क्यो रोवत है ॥
जो काल करे वो आज ही कर, जो आज करे वो अब करले ।
जब चिड़या खेती चुग डारी, फिर पछतावे क्या होवत है ॥

प्रकाशक—

जीवन कार्य्यालय, अजमेर

कृतज्ञता-प्रदर्शन

जीवन-ग्रंथ माला की लोकप्रियता का इससे अधिक प्रमाण क्या होगा कि अनेक धर्म भाव प्रेमी महानुभाव 'माला' से प्रकाशित होनेवाले ग्रंथों के छपने के पूर्व ही ग्राहक हो जाते हैं। ग्रंथमाला की ओर से हम ऐसे महानुभावों की नामावली देते हुए उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हैं। इसके साथ ही हम अन्य धर्मप्राण महानुभावों से भी प्रार्थना करते हैं कि दया दान द्वारा सत्साहित्य के प्रचार में वे हमारा हाथ बटावें जिससे हम सेवा करने में अधिकाधिक योग दे सकें।

श्रीमान्	सेठ	छगनमलजी गोदावत	छोटी सादड़ी
,,	,,	रिखबदासजी नथमलजी नलवाया	छोटी सादड़ी
,,	,,	गुमानमलजी पृथ्वीराजजी नाहर	छोटी सादड़ी
,,	,,	घेवरचन्दजी जामड़	किशनगढ़
,,	,,	छीतरमलजी मिलापचन्दजी दरड़ा	मदनगञ्ज
,,	,,	लाभचन्दजी चौधरी	जावद
,,	,,	भँवरलालजी रूपावत	जावद
,,	,,	सोभालालजी मोड़ीवाला	जावद
,,	,,	मिश्रीमलजी जौरीमलजी लोढ़ा	अजमेर
,,	,,	श्रीचन्दजी अब्वाणी	ब्यावर
,,	,,	तनसुखदासजी दूगड़	सरदारशहर
,,	,,	खूबचन्दजी चण्डालिया	सरदारशहर
,,	,,	नथमलजी दस्साणी	बीकानेर
,,	,,	हीरालालजी सिंघी	बीकानेर

जीवन ग्रन्थमाला का पाँचवाँ पुष्प

परिचय

(सद्धर्ममण्डन)

संग्रहकर्त्ता—

पं० छोटेलाल यति

प्रकाशक—

जीवन-कार्य्यालय
अजमेर

प्रथमावृत्ति २०००

सन् १९३४ ई०

मूल्य ≡) आने

प्रकाशक—
जीवन-कार्य्यालय,
अजमेर.

(१) जीवन-कार्य्यालय, अजमेर।

(२) पण्डित टिकमचन्द्रजी यति बड़ा उपासरा।
(रागड़ी चौक) बीकानेर।

(३) श्री जैन हितेच्छु मण्डल चाँदनीचौक रतलाम (मालवा)

(४) श्री जैन प्रकाश पुस्तकालय सुजानगढ़ (बीकानेर)।

नोट—हर तरह की सुन्दर से सुन्दर छपाई और उचित दामों पर कराना चाहते है तो जीवन-कार्य्यालय अजमेर से पत्र-व्यवहार करे।

मुद्रक—
दी फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस,
अजमेर

द्वि: त्रि: शब्दाः

—•—॥—•—

एक वार पूज्य श्री १००८ श्री जवाहिरलालजी महाराज का थली प्रान्त मे शुभागमन हुआ। उस समय पूज्य श्री से श्रीमान् सेठ फूसराजजी दूगड़ आदि ने अनेक सशयात्मक प्रश्न किये और उनका यथोचित उत्तर पाकर हृदय श्रद्धा और पूज्य श्री की विद्वत्तासे अवनत होगया। थली प्रान्त मे दया-दान सम्वन्धी फैले हुये भ्रमात्मक विचारों का मूलोच्छेन करने के लिये और भोले भाले आवाल वृद्ध वनिताओ मे सच्चे कर्त्तव्य (दया-दान आदि) का सम्पादन करने के लिये पूज्य महाराज ने 'सद्धर्ममण्डन' नामक ग्रन्थ का निर्माण किया था। सर्व मान्य सेठ फूसराजजी दूगड़ ने ऐसे उपयोगी ग्रन्थ को प्रकाशित करा कर जैन-समाज का महान् उपकार किया है। आजतक दया-दान सम्वन्धी, अपूर्व तर्क वितर्कों से परिपूर्ण ऐसी पुस्तक जैन-समाज मे प्रकाशित नहीं हुई है।

तेरह पन्थ समाज ने वीकानेर गवर्नमेन्ट से जब्त कराने के लिये तन, मन, धन से महान् प्रयत्न किया, वे चाहते थे कि सच्चे जैन सिद्धान्तो का प्रकाश न हो और न हमारे फैलाये हुए भ्रमात्मक विचारो का ही दिग्दर्शन हो।

उनके इस प्रोपेगेन्डा को न्याय प्रिय वीकानेर गवर्नमेंटने अनुचित समझ कर और अपना महत्व पूर्ण निर्णय देकर दया-दान के सिद्धान्तो की पूर्ण रक्षा की है। हम सब दया-धर्म प्रेमी श्रीमान वीकानेर नरेश के हृदय से आभारी हैं।

ऐसे ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थों का अधिकाधिक प्रचार करने की महती आवश्यकता है। इसको पढ़कर प्रेमी पाठकों को ग्रन्थ का महत्व और अनेक शास्त्रों की गवेशणा का पता चलेगा, इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर मालाने उक्त ग्रन्थ का परिचय कराने के लिये इस छोटीसी पुस्तिका को निकाला है। उक्त समाज ने जी जान से इस ग्रन्थ को जब्त कराने का जितना प्रयत्न किया, क्या दया-दान प्रेमी पाठक उसके प्रचार की उतनी ही कमी करेंगे? परन्तु आशा ही नहीं किन्तु पूर्ण विश्वास है कि दया-धर्म्म प्रेमी ऐसे सत्य साहित्य को फैलाकर सत्य-धर्म्म का प्रचार अवश्य करेंगे।

विनीतः—

छोटेलाल यति,

जीवन-कार्यालय, अजमेर.

परिचय

दानाधिकार

कइएक अनुकम्पा दानमे एकान्त पाप होनेका उपदेश देकर श्रावकोंसे उसका त्याग कराते हैं। परन्तु जिस समय कोई दयालु पुरुष, हीन दीन दुःखी अनाथ प्राणीको कुछ देता है और वे दीन दुःखी लेते हैं उस समय एकान्त पाप कह कर उसका (अनुकम्पा दानका) निषेध नहीं करते क्योंकि उस समय अनुकम्पा दानके त्याग करानेसे अन्तरायका पाप लगना वे भी मानते हैं। जैसे कि भ्रम० कारने लिखा है—"लेतो देतो इसो वर्तमान देखि पाप न कहे उण वेला पाप कह्या जे लेवे छै तेहने अन्तराय पडे ते माटे साधु वर्त्तमाने मौन राखे" (भ्र० पृ० ५) आगे चल कर (भ्र० पृ० ७२) पर लिखा है "राजादिक वा अनेरा पुरुष कुआ, तालाव, पो, दानशाला विषय उद्यत थयोथको साधु प्रति पुण्य सद्भाव पूछे तिवारे साधुने मौन अवलम्बन करनी कही। पिण तीन कालनों निषेध कह्यो नथी"।

वास्तवमे यह प्ररूपणा जैन शास्त्र से सर्वथा प्रतिकूल है। जैन शास्त्र किसी कालमें भी अनुकम्पा दानका प्रतिषेध नहीं करता। उपदेशमें अथवा भूतकाल और वर्तमान कालमे अनुकम्पा दानको एकान्त पाप कह कर त्याग करानेकी शिक्षा जैन शास्त्र नहीं देता प्रत्युत इसे पुण्यका भी कारण कहता है इसलिए जो उपदेशमे अनु-

कम्पा दानको एकान्त पाप कह कर श्रावकोंसे उसका त्याग कराते है वे मिथ्यादृष्टि और उत्सूत्रभाषी है ।

शास्त्रमे अनुकम्पा दानके निषेध करनेमे तीनों ही कालमे अन्तराय होना कहा है परन्तु देनेवाला देता हो और लेनेवाला लेता हो उसी समयमे अन्तराय होना नहीं कहा है । अतः उपदेशमे या किसी भी समयमे जो अनुकम्पा दानका निषेध करता है वह अन्तराय का भागी और हीनदीन जीवोंकी जीविका का अपहरण करनेवाला है।

जो लोग अनुकम्पा दानको अधर्म्म दानमे गिनते है वे वर्तमान कालमे भी अनुकम्पा दानका निषेध क्यो नहीं करते ? क्योकि अधर्म दानके निषेध करनेमे किसी भी कालमे अन्तराय नहीं कहा है। यदि अधर्म्म दानके त्याग करानेमे भी अन्तराय लगना कोई माने तो उसके हिसाबसे चोरी जारी हिसा आदिके लिए दान देने वाले पुरुषसे भी उसके दानका फल एकान्त पाप नहीं कहना चाहिए क्योकि एकान्त पाप वतलानेसे देनेवाला यदि न देवे तो चोर जार हिंसक आदिके लाभमे अन्तराय पड़ता है । यदि चोरी जारी हिसा आदि महारम्भका कार्य्य करनेके लिये चोर जार हिसकको दान देना एकान्त पाप है इसलिये वर्तमानमे भी उसके निषेध करनेसे अन्तराय नहीं होता तो उसी तरह तुम्हारे मतसे अनुकम्पा दान भी एकान्त पाप है इसलिए उसका वर्तमानमे निषेध करनेसे भी अन्तराय न होना चाहिये । यदि कहो कि हम इन सब विषयोमे एक समान ही मौन रह जाते हैं अर्थात् "कोई दयालु किसी दीन दु.खीको कुछ दे रहा हो और व्यभिचारार्थ कोई वेश्याको दे रहा हो, तथा चोरी जारी हिसाके लिये कोई चोर जार और हिंसकको दे रहा हो इन सभी विषयोमें हम एक समान ही मौन रहते हैं, अन्तरायके भयसे पुण्य पाप कुछ भी नहीं कहते" तो फिर दूसरे

अधर्मों में भी आपको ऐसा ही करना चाहिये क्योंकि जैसे अधर्म दान अधर्म है उसी तरह हिंसा करना चोरी करना आदि भी अधर्म है।

परन्तु वर्तमानमे अनुकम्पा दानके निषेध करने मे आप भी अन्तरायका पाप होना मानते है इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि अनुकम्पा दान, वेश्या, चोर, जार, हिंसक प्राणियोको व्यभिचार चोरी आदिके लिये दिया जानेवाला अधर्म्म दान के समान एकान्त पापका कारण नही है अतएव अनुकम्पा दानके निषेध करनेसे अन्तराय लगना कहा है अधर्म्म दानके निषेध करनेसे नहीं कहा है—

दशवैकालिक सूत्रमे अनुकम्पादान लेनेवाले श्रमण, माहन, दरिद्र, भिखारी आदिको भिक्षार्थ गृहस्थके द्वार पर गये हुए देखकर साधुको उनका अन्तराय न देने के लिये गृहस्थ के द्वारसे टल जाना कहा है परन्तु चोर, जार, हिंसक और वेश्या आदिको चोरी जारी आदि कुकर्म के निमित्त गृहस्थ के द्वार पर दान लेने के लिये खड़े देख कर साधु को वहां से टल जाना नहीं कहा है इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि एकान्त पापके कार्य्यमे वाधा देनेसे अन्तराय का पाप नहीं होता पुण्यकार्य्यमें वाधा पहुचानेसे अन्तराय कर्म्म वँधता है अतः अनुकम्पादान का किसी भी समय में निषेध नहीं करना चाहिये क्योंकि इसमें पुण्यका सद्भाव है अतएव उक्त सूत्र में अनुकम्पादान में वाधा पहुचाने से अन्तराय होना माना है एकान्त पापके कार्य्य चोरी जारी आदिमे वाधा देनेसे अन्तराय लगना नहीं कहा है इसलिये अनुकम्पादान को एकान्त पाप मे वताना अज्ञान का कार्य्य है।

अनुकम्पादान यदि अधर्म्म दानमे है तो उसका निषेध करनेसे वर्तमानमें भी अन्तराय न होना चाहिये जैसे चोरी जारी हिंसा आदि कुकर्म करानेके लिये उद्यत हुए पुरुष को वर्तमानमे भी नि-

षेध करनेसे अन्तराय नहीं लगती उसी तरह् अनुकम्पादानका एकान्त पाप कहनेवालोंके मतमे वर्तमानमे भी उसका (अनुकम्पादानका) निषेध करनेसे अन्तराय न होनी चाहिये । यदि कहो कि चोरी, जारी, हिसा आदिके निषेध करनेसे किसीके स्वार्थमे बाधा नही होती इसलिये वर्तमानमे भी चोरी, जारी, हिसा आदिके निषेध करने से अन्तराय नहीं होती परन्तु अनुकम्पादानके निषेध करनेसे दान लेनेवालेके स्वार्थकी हानि होती है इसलिये हम वर्तमानमे अनुकम्पादानका निषेध नहीं करते तो यह् बात अयुक्त है चोरके चोरी छुडानेसे उसके कुटुम्बके भरण पोषणमे बाधा पहुचती है एवं जार को जारीका त्याग करानेसे उसकी प्रियाके कामसुखकी हानि होती है एवं हिंसकके हिसा छुडाने पर मांसाहारीके मास भोजनमे क्षति होती है ऐसी दशामे (उक्त जीवोंके स्वार्थमे बाधा पहुचने पर भी) चोरी जारी हिसा आदिका वर्तमानमे त्याग करा देना यदि अन्तराय रूप पापका कारण नहीं है तो हीन दीन प्राणियोंके स्वार्थमे बाधा पहुंचने पर भी पर्तमान कालमें अनुकम्पादानके निषेध करनेसे तुम्हारे मतमे न होना चाहिये ? परन्तु तुमने वर्तमान कालमे अनुकम्पादानका निषेध करना अन्तरायका कारण माना है और शास्त्र मे सभी काल मे अनुकम्पादान का निषेध करना पापका हेतु कहा है अतः अनुकम्पादान को एकान्त पापमे स्थापना करके उपदेशमे उसके त्यागकी शिक्षा देना अनुकम्पाद्रोहियों का कार्य्य है ।

अनुकम्पादानको एकान्त पापमे कायम करने वाले मनुष्योंसे यह भी पूछना चाहिये कि एक पुरुष हाथमें रोटी लेकर भिक्षुकोको देनेके लिये धर्मशाला मे जारहा है और दूसरा रुपये लेकर व्यभिचारार्थ वेश्या को देने जारहा है, तीसरा स्वयं खाने और

दूसरे को मांस खिलाने के लिये छुरी लेकर बकरा मारने जा रहा है, चौथा अपने परिवार के पोषण के लिये चोरी करने जाता है, इन सभी पुरुषोसे मार्ग में यदि साधु मिलें तो वह किसको एकांत पाप की शिक्षा देकर त्याग करावें और किसके विषय मे मौन रहें ? यदि कहो कि हाथ में रोटी लेकर भिक्षुकों को देने के लिये धर्मशाला में जाते हुए पुरुष के विषय में साधु मौन रहें और शेष सभी लोगों को एकान्त पाप का उपदेश देकर उनसे चोरी व्यभिचार और हिंसाका त्याग करावें तो यहा यह प्रश्न होता है कि तुम्हारे मत मे अनुकम्पा दान देना भी तो चोरी जारी और हिंसा के समान ही एकान्त पाप है फिर अनुकम्पादान देनेके लिये जाने वाले के विषय में साधु क्यों मौन रहता है ? तुम्हारे हिसाब से उसको भी त्याग करा देना चाहिये। परन्तु तुम लोग भी अनुकम्पा दानके विषयमें वर्तमानमें मौन रह जाते हो उसका त्याग नहीं कराते इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि अनुमम्पादान चोरी जारी और हिंसा आदिकी तरह एकान्त पाप का कार्य्य नहीं किन्तु पुण्यका भी कारण है।

कई अनुकम्पादान के विरोधी, ऐसा कुतर्क करते हैं कि "अनुकम्पादानमे यदि पुण्य है तो श्रावकोंको सामायक और पोपा न करना चाहिये क्योंकि सामायक और पोपामें बैठा हुआ श्रावक अनुकम्पादान नहीं देता इसलिये हीन दीन जीवोंकी जीविकामे बाधा पड़ती है "जैसे कि भ्रम० कारने लिखा है" वली कोईने सामायक पोपो करावणों नहीं सामायक पोपा मे कोईने देवे नहीं यदपिण इहा अन्तराय कर्म बंधे छे" (भ्र० पृ० ५१)

इसका उत्तर यह है—श्रावक सामायक और पोपा विशिष्ट गुण की प्राप्ति के लिये करते हैं न कि अनुकम्पादानसे अपने को

बचाने के लिये। अनुकम्पादान देना सामान्य गुण है और सामायक पोपा करना विपिष्ट गुण है उस विशिष्ट गुणकी प्राप्तिके समय सामान्य गुणका त्याग होना स्वाभाविक है। जैसे दिशाकी मर्य्यादा करने वाला जो श्रावक घरसे वाहर जानेका त्याग किया हुआ है वह मुनिराजके सम्मुखभी उनके स्वागतार्थ नहीं जाता इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि मुनिराज के सम्मुख जाना छोडने के लिए इसने दिशाकी मर्य्यादकी है। तथा मुनिराज के स्वागतार्थ उनके सम्मुख जाना एकान्त पाप भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि उस श्रावकने विशिष्ट गुण की प्राप्ति के लिये दिशाकी मर्य्यादा की है मुनिराजके सम्मुख जानेको एकान्त पाप जान कर उसे छोड़नेके आशयसे नहीं उसी तरह सामायक और पोपा करने वाला श्रावक एकान्त पाप जान कर अनुकम्पा दान देना नहीं छोड़ता है किन्तु विशिष्ट गुणका उपार्जन करते समय सामान्य गुण उससे छूट जाता है अत अनुकम्पादानको एकान्त पाप जान कर श्रावक सामायक और पोषामें उसका त्याग करते है यह कहनेवाले अविवेकी है।

जो श्रावक विशिष्ट निर्जराके निमित्त वैराग्यभावसे स्वयं उपवास करता है और उपदेश देकर अपने परिवारको भी उपवास कराता है वह उस रोज घरमे रसोई न होनेसे साधुको आहार पानी नही देता, तो भी उसको साधुदानका अन्तराय नहीं होता किन्तु विशिष्ट निर्जराका लाभ होता है क्योंकि उसने साधुदानमे अन्तराय देनेके लिये उपवास नहीं किया है उसी तरह जो श्रावक सामायक और पोपा करते है उसको अनुकम्पादान का अन्तराय नहीं होता किन्तु विशिष्ट गुण की प्राप्ति होती है क्योंकि अनुकम्पादान को त्यागनेके उद्देश्यसे श्रावक सामायक और पोषा नही करते। अत· अनुकम्पादान को एकान्त पाप जान कर सामा-

यक और पोषामें उसका त्याग बतलाना अज्ञान से परिपूर्ण है।

भूत भविष्यत् और वर्तमान तीनों ही कालसे अनुकम्पादानका निषेध करना शास्त्र में वर्जित है। जैसे कि सुयगडाग सूत्रमें लिखा है—

"जेयणं पडिसेहंति वित्तिछेयं करंतिते"

अर्थात् जो अनुकम्पादानका निषेध करते है वे हीन दीन जीवोंकी जिविका का उच्छेद करते है।

यहां वर्तमान कालका नाम न लेकर सभी कालमे अनुकम्पादानका निषेध करना मना किया है इसलिये जो किसी भी कालमे अनुकम्पादानका निषेध करते है वे हीन दीनजीवोकी जिविकाका छेदन करनेवाले पापी (असाधु) हैं। भ्रमविध्वंसनकारने उस गाथाको लिखकर इसके नीचे टव्वा अर्थ लिखा है वह टव्वा अर्थ यह है "जे गीतार्थ दाननेनिषेधे ते वृत्तिच्छेद वर्तमान काले पामवानो उपाय तेहिनो विघ्न करे" तथा इस पाठकी समालोचना करते हुए भ्र० कारने लिखा है "दान लेवे तेदेवे छै तेवेला निषेध्या वृत्तिछेदकिम हुवे अने जे लेवे ते देवे नथी तो वृत्तिच्छेद किम हुवे। ते माटे वृत्तिच्छेद वर्तमानकाले इज छै। वली सुयगडांगनीवृत्ति शीलांकाचार्य्य कीधी ते टीकामें पिण वर्तमानकालरो इज अर्थ छै" परन्तु यह बिलकुल मिथ्या है सुयागडाग सूत्रकी उक्त गाथा में वर्तमान कालका नाम तक नहीं है और शीलाकाचार्य्यने जो उक्त गाथा की टीका लिखी है उसमें भी वर्तमान कालका जिक्र नहीं है किन्तु गाथा और उसकी टीकामे सामान्यरूपसे सब कालके लिए अनुकम्पादानका निषेध करना वर्जित किया है। वह गाथा लिखी जा चूकी है उसकी टीका यह है— "येचकिलसूक्ष्मधियोवयमितिमन्यमानाआगमसद्भावानभिज्ञा प्रतिषेध

बचाने के लिये। अनुकम्पादान देना सामान्य गुण है और साम
यक पोषा करना विषिष्ट गुण है उस विशिष्ट गुणकी प्राप्तिके सम
सामान्य गुणका त्याग होना स्वाभाविक है। जैसे दिशाकी मर्य्याद
करने वाला जो श्रावक घरसे बाहर जानेका त्याग किया हुआ है
वह मुनिराजके सम्मुखभी उनके स्वागतार्थ नहीं जाता इसलिए यह नहीं
कहा जा सकता कि मुनिराज के सम्मुख जाना छोड़ने के लिए इसने
दिशाकी मर्य्यादकी है। तथा मुनिराज के स्वागतार्थ उनके सम्मुख
जाना एकान्त पाप भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि उस श्रावकने
विशिष्ट गुण की प्राप्ति के लिये दिशाकी मर्य्यादा की है मुनिराजके
सम्मुख जानेको एकान्त पाप जान कर उसे छोड़नेके आशयसे नहीं
उसी तरह सामायक और पोषा करने वाला श्रावक एकान्त पाप
जान कर अनुकम्पा दान देना नहीं छोड़ता है किन्तु विशिष्ट गुणका
उपार्जन करते समय सामान्य गुण उससे छूट जाता है अत अनु-
कम्पादानको एकान्त पाप जान कर श्रावक सामायक और पोषामे
उसका त्याग करते है यह कहनेवाले अविवेकी है।

जो श्रावक विशिष्ट निर्जराके निमित्त वैराग्यभावसे स्वयं उप-
वास करता है और उपदेश देकर अपने परिवारको भी उपवास
कराता है वह उस रोज घरमे रसोई न होनेसे साधुको आहार
पानी नहीं देता, तो भी उसको साधुदानका अन्तराय नही होता
किन्तु विशिष्ट निर्जराका लाभ होता है क्योंकि उसने साधुदानमे
अन्तराय देनेके लिये उपवास नहीं किया है उसी तरह जो श्रावक
सामायक और पोषा करते हैं उसको अनुकम्पादान का अन्तराय
नहीं होता किन्तु विशिष्ट गुण की प्राप्ति होती है क्योंकि अनुक-
म्पादान को त्यागनेके उद्देश्यसे श्रावक सामायक और पोषा नहीं
करते। अत अनुकम्पादान को एकान्त पाप जान कर सामा-

यक और पोषामें उसका त्याग बतलाना अज्ञान से परिपूर्ण है।

भूत भविष्यत् और वर्तमान तीनों ही कालमें अनुकम्पादानका निषेध करना शास्त्र मे वर्जित है। जैसे कि सुयगडाग सूत्रमें लिखा है—

"जेयणं पडिसेहंति वित्तिछेयं करंतिते"

अर्थात् जो अनुकम्पादानका निपेध करते है वे हीन दीन जीवोंकी जिविका का उच्छेद करते है।

यहां वर्तमान कालका नाम न लेकर सभी कालमें अनुकम्पादानका निषेध करना मना किया है इसलिये जो किसी भी कालमे अनुकम्पादानका निषेध करते है वे हीन दीनजीवोंकी जिविकाका छेदन करनेवाले पापी (असाधु) हैं। भ्रमविध्वंसनकारने उस गाथाको लिखकर इसके नीचे टव्वा अर्थ लिखा है वह टव्वा अर्थ यह है "जे गीतार्थ दाननेनिषेधे ते वृत्तिच्छेद वर्तमान काले पामवानो उपाय तेहिनो विघ्न करे" तथा इस पाठकी समालोचना करते हुए भ्र० कारने लिखा है "दान लेवे तेदेवे छै तेवेलां निपेध्या वृत्तिछेदकिम हुवे अने जे लेवे ते देवे नथी तो वृत्तिच्छेद किम हुवे। ते माटे वृत्तिच्छेद वर्तमानकाले इज छै। वली सुयगडांगनीवृत्ति शीलांकाचार्य्य कीधी ते टीकामें पिण वर्त मानकालरो इज अर्थ छै" परन्तु यह विलकुल मिथ्या है सुयागडाग सूत्रकी उक्त गाथा में वर्तमान कालका नाम तक नहीं है और शीलांकाचार्य्यने जो उक्त गाथा की टीका लिखी है उसमें भी वर्तमान कालका जिक्र नहीं है किन्तु गाथा और उसकी टीकामे सामान्यरूपसे सब कालके लिए अनुकम्पादानका निषेध करना वर्जित किया है। वह गाथा लिखी जा चूकी है उसकी टीका यह है— "येचकिलसूक्ष्मधियोवयमितिमन्यमानाआगमसद्भावानभिज्ञा प्रतिपेध

न्तितेऽप्यगीतार्थाः प्राणिनां वृत्तिच्छेद वर्तनोपाय विघ्नम् कुर्वन्ति" अर्थात् जो अपने को सूक्ष्मदर्शी मानने वाले आगम के तत्वको न जाननेके कारण अनुकम्पादानका निषेध करते हैं। वे गीतार्थ नहीं हैं क्योंकि वे प्राणियोंकी जीविकामे बाधा देते हैं।

यहां टीकाकारने वर्तमान कालका नाम न लेकर किसी भी कालमे अनुकम्पादान का निषेध करनेवालेको अगीतार्थ और प्रा० णियोंकी जीविकाका विनाश करनेवाला कहा है इसलिये उस टीकाका नाम लेकर वर्तमाम कालमे ही अनुकम्पादानके निषेध करनेमे पाप कहना भूल का कार्य्य है। भ्रमविध्वंसनकारने जो सुयगडांगकी इस गाथा के निचे टब्बा अर्थ दिया है वह मूल गाथा और उसकी टीकासे विरुद्ध होने के कारण अप्रमाणिक है उसका आश्रय लेकर जनतामे भ्रम फैलाना साधुओं का कार्य्य नहीं है। भ्रमविध्वंसनकी पुरानी प्रतिमे तो शीलाकाचार्य्य की टीकामे आये हुए "वर्तन" शब्दका वर्तमान काल अर्थ किया है। वह लेख निम्न लिखित है—

"वृत्तिच्छेदं वर्तनोपाय विघ्नं कुर्वन्ति"

"वृत्ति० आजीविका तेहनो छे० छेद व० वर्तमान काले उ० पामवानो उपाय तेहनो वि० विघ्न के० करे ते अविवेकी"

यहां जीतमलजी ने "वर्तन" शब्दका वर्तमान अर्थ किया है परन्तु यह सर्वथा मिथ्या है। वर्तन शब्दका अर्थ आजीविका है वर्तमान काल नहीं। टीकाकारने मूल गाथा मे आये हुए वृत्ति शब्दका अर्थ वर्तन लिखा है इसलिए "वृत्ति" शब्दका वर्तन शब्द पर्य्याय शब्द है यह वर्तमान अर्थ का वाचक नहीं हो सकता तथापि भोली जनता को भ्रम मे डालने के लिए अथवा अज्ञानवश जीतमलजीने

"वर्तन" शब्दका वर्तमान अर्थ लिखा है ऐसे लोगोसे न्यायकी आशा रखना दुराशा मात्र है ।

भविष्यमे होनेवाले लाभमें विघ्न पहुँचानेसे "पिहितागामिपथ" नामक अन्तराय लगता है । ठाणाङ्ग सूत्र में अन्तरायका भेद वतलाने के लिए यह पाठ आया है—

" अन्तराइए कम्मे दुविहे पाणत्ते तञ्जाहा—
पडुप्पन्नविनासिए पिहितागामिपहं "

अर्थात् अन्तराय कर्म दो प्रकारके कहे है एक प्रत्युत्पन्नविनाशी और दूसरा पिहिता गामि पथ वर्तमानमे मिलती हुई वस्तुको न मिलने देना "प्रत्युत्पन्न विनाशी" कहलाता है और भावी लाभके मार्गको रोक देना "पिहितागामिपथ" नामक अन्तराय कहलाता है ।

यहा ठाणाङ्गके मूलपाठमें भावी लाभके मार्गको रोक देनेसे अन्तराय लगना कहा है इसलिए भ्रमविध्वसनकारने जो यह लिखा है कि "अन्तराय तो वर्तमान कालमे इज कही छै पिण आर वेलां अन्तराय कही नहीं" यह विलकुल शास्त्र विरुद्ध है । ठाणाङ्गके उक्त पाठमें भविष्य कालमे भी अन्तराय कही है इसलिए जो लोग उपदेश में एकान्त पाप कह कर अनुकम्पादानका त्याग कराते हैं वे ठाणाङ्ग सूत्रके मूल पाठानुसार "पिहिता गामि पथ" नामक अन्तरायके भागी हैं ।

भावी लाभके मार्गको रोक देनेसे अन्तराय होना केवल शास्त्रसे ही नहीं प्रत्यक्षसे भी सिद्ध है । जैसे कोई मनुष्य किसी महाजनके दश हजार रुपयोका ऋणी है उससे कोई यदि ऋण देनेका त्याग करावे तो यह प्रत्यक्षही महाजन के लाभमे अन्तराय देना है । अतः भावी लाभके मार्ग को रोक देनेसे अन्तराय न मानना शास्त्र और प्रत्यक्ष दोनो से विरुद्ध समझना चाहिये ।

हीन दीन जीवोंको अनुकम्पा दान देना एकान्त पाप नहीं है। जो अनुकम्पा दानको एकान्त पाप बना कर श्रावकोंसे उसका त्याग कराता है वह ठाणांग सूत्रके मूल पाठानुसार "पिहिता गामि पथ" नामक अन्तराय कर्म्म बांधता है। (देखो * पृष्ठ ८७)

आनन्द श्रावकने हीन दीन दुःखी जीवोको अनुकम्पा दान देनेका अभिग्रह नही धारण किया था। किन्तु अन्य तीर्थी को गुरु बुद्धिसे दान न देनेका अभिग्रह धारण किया था। (देखो पृष्ठ ९४)

आनन्द श्रावकके समान ही अभिग्रह धारी वाहर व्रतधारी श्रावक राजा प्रदेशीने दानशाला खोल कर हीन दीन दुःखी जीवको अनुकम्पा दान दिया था। (देखो पृष्ठ ९७)

राज प्रश्नीय सूत्रमे राजा प्रदेशी को दान देता हुआ विचरना लिखा है दान देने से न्यारा होकर नहीं। (देखो पृष्ठ १००)

भगवती शतक ८ उद्देशा ६ के मूलपाठमे मिथ्या धर्म्मका समर्थन करने वाले तथा मिथ्यादर्शनानुसारी वेश धारण करने वाले असंयतिको गुरु बुद्धिसे दान देनेसे एकान्त पाप कहा है अनुकम्पा दान देनेसे नह (देखो पृष्ठ १०१)

आद्रकुमार मुनिने दया धर्म्मके निदक और हिसा धर्म्मके समर्थक वैडाल व्रतिक नीच वृत्ति वाले ब्राह्मणको गुरु बुद्धिसे भोजन देनेसे नरक जाना कहा है और मनुस्मृति† मे भी यही बात कही है अनुकम्पा दानका खण्डन नही किया है। (देखो पृष्ठ १०६)

---

* सतधर्म मण्डन प्रथमा वृत्ति।

† धर्मध्वजी सादा लुब्ध छाद्मिको लोक दम्भक।
वैडाल वृत्ति को ज्ञेयो हिस्र सर्वाभिसंधक ॥ ९५ ॥
अधोदृष्टि नैष्कृतिकः स्वार्थ साधन तत्पर।
शठो मिथ्या विनीतश्च बकव्रतचरोद्विजः ॥ आदि० ॥

भृगु पुरोहितके पुत्रोंने अनुकम्पा दानमे एकान्त पाप नहीं कहा है किन्तु जो लोग यज्ञयागादि करने और पुत्रोत्पादन करनेसे ही दुर्गतिका रुकना बतला कर प्रव्रज्या ग्रहण करनेको व्यर्थ कहते हैं, उनके मन्तव्यको मिथ्या कहा है। (देखो पृष्ठ १०९)

सुयगडांग सूत्र श्रुतस्कन्ध २ अ० ५ गाथा ३३ मे भाषा सुमतिका उपदेश किया है अनुकम्पा दानका खण्डन नहीं किया है। उस गाथामे वर्तमान कालका नाम भी नहीं है। (देखो पृष्ठ ११०)

नन्दन मणिहार अनुकम्पा दान देनेसे मेढक नहीं हुआ किन्तु नन्दा नामक पुष्करिणीमे आसक्त होनेसे हुआ। (ज्ञाता सूत्र अध्ययन १३ देखो पृष्ठ ११२)

धर्म्मदानको छोड़ कर बाकीके नौ दान एकान्त अधर्म्मदान नहीं हैं। इनके गुणानुसार नाम रक्खे गये हैं, यह भीषणजीने भी लिखा है। (देखो पृष्ठ ११४)

विश्रामस्थानसे बाहर की सभी क्रियाएं एकन्त पापमें नहीं हैं। (देखो पृष्ठ ११९)

ग्राम धर्मादि लौकिक धर्म्म और ग्रामस्थविरादि लौकिक स्थविर ग्राम आदिके चोरी जारी आदि बुराइयां दूर करते हैं इसलिये उन्हे एकान्त पापमे बताना अज्ञानता है। (देखो पृष्ठ १२०)

ठाणाङ्ग ठाणा नौ में कहे हुए नवविध पुण्य केवल साधुको ही दान देनेसे नहीं किन्तु उनसे इतर को दान देने से भी होते है। (देखो पृष्ठ १२४)

भीषणजीके जन्म से पहले के बने टब्बा अर्थ मे लिखा है कि "पात्रने विषे अन्नादिक दीजे तेहथकी तीर्थंकर नामादिक पुण्य प्रकृतिनो बन्ध तेहथकी अनेराने देयूं ते अनेरी पुण्य प्रकृतिनो बन्ध।" तीर्थंकर नामकी पुण्य प्रकृति ४२ पुण्य प्रकृतियोंके आदिमें

नही अपितु अन्तमें है अतः तीर्थकरादि कहनेसे सभी पुण्य प्रकृतियो का ग्रहण नही हो सकता। (देखो पृष्ठ १२७)

ठाणाङ्ग ठाणा नौके मूलपाठमे न कहे जाने पर भी जैसे साधुको पडिहारी सुई कतरनी आदिके दान से पुण्य ही होता है उसी तरह साधु से इतरको धर्मानुकूल वस्तु देने से पुण्य ही होता है एकान्त पाप नही। (देखो पृष्ठ १३०)

साधुसे इतर सभी जीव को कुपात्र कायम करके उनको दान देने से मांस भक्षण व्यसन कुसीलादि सेवनकी तरह एकान्त पाप कहना अज्ञान है। साधुसे इतर होने पर भी श्रावक को तीर्थ में गिना गया है और उसे गुण रत्न का पात्र कहा गया है। कुपात्र नही कहा। (देखो पृष्ठ १३१)

ठाणाङ्ग ठाणा ४ की चौभंगीमे साधुसे इतरको दान देने वाला अक्षेत्र वर्षी नहीं कहा है अपितु जो प्रवचन प्रभावना के लिये सब को दान देता है उसकी टीकाकार ने प्रशंसा की है क्योकि प्रवचन प्रभावनाके लिये दान देनेसे ज्ञाता सूत्रमे तीर्थकर गोत्र बांधना कहा है। (देखो पृष्ठ १३३)

शकडाल पुत्र श्रावकने गोशालक को दान देने से धर्म्म तप का निषेध किया है पुण्य का निषेध नही किया है तथा निर्जरा के साथ ही पुण्य बन्ध होने का कोई नियम भी नही है। (देखो पृष्ठ १३६)

चोर जार हिसक आदि महारम्भी प्राणीको चोरी जारी हिसा आदि महारम्भका कार्य्य करनेके लिये दान देनेसे मृगालोढ़के दु ख भोगनेका प्रश्न विपाक सूत्रमे किया गया है अनुकम्पा दानसे नही। (देखो पृष्ठ १३८)

क्रोधी, मानी, मायी और हिंसा, झूठ, चोरी और परिग्रह के सेवी ब्राह्मण को उत्तराध्ययनके अध्याय १२ गाथा २४ मे पापकारी

क्षेत्र कहा है सभी ब्राह्मणको नहीं। (देखो पृष्ठ १४०)

व्यभिचारिणी स्त्री को रख कर भाड़े पर उससे व्यभिचार कराना पन्द्रहवें कर्मादान का सेवन करना है हीन दीन दुःखी का अनुकम्पा दान देना अथवा साधु से इतरको पोषण करना नहीं। (देखो पृष्ठ १४२)

किसी भी अभिप्रायसे अपने आश्रित प्राणीका वध, वन्धन छविच्छेद और अतिभार आदि डालनेसे अतिचार होता है प्राण-वियोग करने के अभिप्राय से ही नहीं क्योंकि वह अनाचार है। (देखो पृष्ठ १४६)

भिक्षुकों का वेरोक टोक प्रवेश करनेके लिये तुङ्गिया नगरी के श्रावकों के दरवाजे खुले रहते थे। (देखो पृष्ठ १४९)

श्रावकको अप्रत्याख्यान (अव्रत) की क्रिया नही लगती। (देखो पृष्ठ १५१)

जैसे मिथ्यादर्शन के अंशतः नही हटने पर भी श्रावक को मिथ्यात्व की क्रिया नहीं लगती उसी तरह अप्रत्याख्यान से अंशतः नहीं हटने पर भी श्रावक को अप्रत्याख्यानि की क्रिया नहीं लगती है। (देखो पृष्ठ १६१)

भगवती शतक ३ उद्देशा १ मे श्रावकके हित, सुख, पथ्य और अनुकम्पाकी इच्छा करनेसे "सनत्कुमार" देवेन्द्र को भव सिद्धिसे लेकर यावत् चरम होना कहा है। उववाई सूत्रमे श्रावक को धार्मिक, धर्मानुग, धर्मेष्ट, धर्माख्यायी धर्म्मप्ररंजन आदि कहा है। (देखो पृष्ठ १६३)

जिसमें भाव शस्त्र मौजूद है वह यदि कुपात्र है तो फिर षष्ट गुण स्थान वाले प्रमादी साधु भी कुपात्र ही ठहरेगे। राजप्रश्नीय सूत्रमे साधुके समान श्रावकसे भी आर्य्यधर्म्म सम्बन्धी सुवाक्य

सुननेसे दिव्य ऋद्धिकी प्राप्ति कही गई है। (देखो पृष्ट १६६)

श्रावक अल्पारम्भ और अल्प परिग्रह से देवता होते हैं प्रत्या ख्यान और व्रत से नहीं। (देखो पृष्ट १६८)

सुयगडांग सूत्र की गाथा का नाम लेकर गृहस्थ के दान को संसार भ्रमण का हेतु बताना मिथ्या है। (देखो पृष्ट १७१)

साधु यदि उत्सर्ग मार्गमे गृहस्थको अन्नादि दान देवे तो निशीथ सूत्र उद्देशा १५ बोल ७८-७९ मे प्रायश्चित्त होना कहा है परन्तु हीन दीन दुःखीको अनुकम्पा दान देने वाले गृहस्थको प्रायश्चित्त नही कहा है तथा उस गृहस्थके अनुकम्पा का अनुमोदन करने वाले साधुको भी प्रायश्चित्त नही कहा है। अपवाद मार्गमे अन्य यूथिक और गृहस्थ को शामिलमे मिली हुई भिक्षा को बांट कर साधु भी देते हैं। (देखो पृष्ट १७३)

अपनी निरवद्य भिक्षा वृत्ति कायम रखनेके लिये तथा ज्ञान दर्शन और चारित्रमे शिथिलता न आने देनेके लिये उत्सर्ग मार्गमें साधु गृहस्थको दान नहीं देते। (देखो पृष्ठ १७९)

साधुसे इतरको अनुकम्पा दान देनेके लिये जो अन्न बनाया जाता है उसे दशवैकालिक सूत्रमे (पुण्ट्ठा पगडरम पुण्यार्थ प्रकृत) कहा है पापार्थ प्रकृत नही कहा और जिसके घरमे उक्त अन्न बनाया जाता है उसे शिष्ट कहा है। (देखो पृष्ट १८२)

भगवती शतक २ उद्देशा ५ मे साधुकी तरह श्रावक की सेवा करने का भी शास्त्र श्रवणसे लेकर मोक्ष तक फल मिलना कहा है। (देखो पृष्ठ १८३)

उत्तराध्ययन सूत्रके अट्ठाइसवे अध्ययनमे सहधर्मी भाईको भातपानी आदिके द्वारा उचित सत्कार करना समकित का आचार कहा है। व्यवहार सूत्रके दूसरे उद्देशे के भाष्य मे प्रवचनके द्वारा

श्रावक का साधर्मी साधु और श्रावक दोनो कहे गये हैं। (देखो पृष्ठ १८५)

भगवती शतक १२ उद्देशा १ मे अपने सहधर्मी भाईको भोजन कराना पोषध धर्मकी पुष्टिमें माना है। देखो पृष्ठ १८७

ग्यारह प्रतिमाओं का विधान तीर्थंकोंने किया है। ग्यारहवीं प्रतिमाधारी श्रावक, दश विध यति धर्मका अनुष्ठान करने वाला बड़ा ही पवित्रात्मा एवं सुपात्र होता है इसे कुपात्र कहने वाले अज्ञानमें हैं। (देखो पृष्ठ १८८)

अम्बड संन्यासी और वरुण नागत्तूया के पाठमे आये हुए कल्पका दृष्टान्त देकर ग्यारहवीं प्रतिमाधारी के कल्पको तीर्थंकर की आज्ञा से बाहर कहना अज्ञान है। (देखो पृष्ठ १९३)

सामायक और पोषा के समय श्रावक, पूंजनी आदि उपकरण जीवदया के लिये रखते हैं अपने शरीर रक्षा के लिये नहीं अतः श्रावक के पूंजनी आदि उपकरणो को एकान्त पापमे स्थापन करना भूल है। (देखो पृष्ठ १९४)

अढाई द्वीपसे बाहर रहने वाले तिर्यञ्च श्रावक कई व्रतोंमें श्रद्धा मात्र रखनेसे बारह व्रतधारी माने जाते हैं। मनुष्य श्रावक की तरह सभी व्रतो का शरीर से स्पर्श और पालन करने से नहीं। (देखो पृष्ठ १९७)

श्रावक देश संयम पालनार्थ जो मन, वचन कार्य और उपकरणोंका व्यापार करता है वह सुप्रणिधान है दुष्प्रणिधान नहीं। (देखो पृष्ठ १९९)

अनुकम्पाधिकारः

बहुतसे लोग अहिंसा धर्म्म का रहस्य नहीं समझ कर अनुकम्पा की व्याख्या को भी अजीब तरह से करते है। उनके मत से जो मनुष्य जीवो को मारता है वह हिंसा करता और एकांत पापी होता है। जो नहीं मारता वह अहिंसा धर्मका पालन करता है वह धार्मिक है। लेकिन जो हिंसकको उपदेश देकर उसे हिंसा कर्म्मसे रोकता है और प्राणीकी प्राण रक्षा करता है वह भी अधर्म्म करता है। जैसे भ्रमविध्वमन कार भ्रमविध्वसन पृष्ठ १२० पर लिखते हैं, "श्री तीर्थंकर देव पिण पोताना कर्म खपावा तथा अनेराने तारिवाने अर्थे उपदेश देवे इम कह्यो छै पिग जीव बंचावा उपदेश देवे इम कह्यो नहीं" इत्यादि। अनुकम्पा की ढाल मे भीषणजी ने इससे भी अधिक बढ़ कर कहा है "कईक अज्ञानी इम कहे छ. कायारा काजे हो देवा धर्म उपदेश। एकन जीवने समझावियां मिटजावे हो घणा जी· वांरा क्लेश। छ. कायारे घरे शान्ति हुवे एहवा भापे हो अन्य तीर्थी धर्म। त्यांभेद न पायो जिन धर्मरो ते तो भूल्या हो उदय आया अशुभ कर्म। मतमार कहे उणरो रागीरे अीजे करणे हिंसा लागी रे"

अर्थात् "कुछ लोग कहते हैं कि वे छः कायके जीवो के घरमें शान्ति होनेके लिये धर्म्म का उपदेश देते है, क्योकि एक जीवको समझा देनेसे बहुत जीवोका क्लेश मिट जाता है। लेकिन छ· काया के जीवो के घरोमे शान्ति होने के लिये उपदेश देना, अन्य तीर्थी लोगोका धर्म्म बतलाता है जैन धर्म्म नहीं बतलाता इसलिये छः कायके जीवो के घरोमे शान्ति होनेके लिये उपदेश देने वाले जैन धर्म्मके रहस्योको नहीं जानते भूले हुए हैं और उनको अशुभ कर्म्म का उदय हुआ है। जो मनुष्य हिंसक के हाथसे "मतमार"

करता है वह तीसरे करण से हिंसा का
कह कर जीव की रक्षा करता है वह तीसरे करण से हिंसा का
पाप करता है।"

भीषणजी ने और भी कहा है "मति मारणरो कह्यो नहीं तेतो
सावज जाणी वायरे" लेकिन 'मतमार' ऐसा कहके प्राण रक्षा करना
कभी सावद्य नहीं है। कोई भी जैन धर्म्म के तत्वको जानने वाला
इसका अनुमोदन नहीं कर सकता। ऐसे ही अनर्गल उपदेश देकर
लोगों ने जैन जगतमे भ्रम फैलाया है। जहाँ उपदेश द्वारा मरते
प्राणीकी रक्षा करना एकान्त पाप है, वहां और किसी उपायसे वैसा
करना तो और भी गर्ह्य होगा अर्थात् उसके तो एकान्त पाप होनेमे
कोई सन्देह ही नहीं है।

भ्रमविध्वंसनकारने अपने मतकी पुष्टिमे कुछ दृष्टान्त भी देडाले
हैं, जैसे "एक मनुष्य झूठ बोलता है और दूसरा झूठ नहीं बोलता
और तीसरा सत्य बोलता है। इनमे जो झूठ बोलता है वह एकान्त
पापी है और जो झूठ नहीं बोलता है वह एकान्त धार्मिक है। तथा
जो सत्य बोलता है उसके दो भेद हैं। एक सावद्य सत्य बोलता है
और दूसरा निरवद्य सत्य बोलता है। इनमें जो सावद्य सत्य बोलता
है वह एकान्त पाप करता है और जो निरवद्य सत्य बोलता है वह
धर्म्म करता है। यह तो दृष्टान्त हुआ इसका दार्ष्टान्त जीतमलजी
यह देते हैं—"एक मनुष्य हिंसा करता है और दूसरा हिंसा नहीं
करता और तीसरा रक्षा करता है। इनमें जो हिंसा करता है वह
एकान्त पापी है और जो हिंसा नहीं करता है वह एकान्त धार्मिक
है। तथा जो जीव रक्षा करता है उसके दो भेद है। एक हिंसकको
हिंसा के पाप से बचानेके लिये न मारनेका उपदेश करता है और
दूसरा हिंसक के हाथसे मारे जाने वाले प्राणीकी प्राणरक्षा करनेके
लिये न मारनेका उपदेश देता है। इनमें जो हिंसकको हिंसा का पाप